राम जी की कृपा

डॉ॰ भरतलाल शर्मा



रामजी की कृपा

लेखक

डॉ. भरतलाल शर्मा

प्रकाशक

लक्ष्मी प्रकाशन

4734, बल्लीमारान, दिल्ली-6

मूल्य : बारह रुपया



भूमिका

श्रद्धेय डॉ. भरतलाल शर्मा ऋषियों के ज्ञान को सरल एवं सुबोध शब्दों में, जन-जन में प्रसारित कर रहे हैं। डॉ. भरतलाल शर्मा स्वयं ईश्वरीय वातावरण में रहते हैं। भौतिक स्तर पर अब उनकी कोई कामना नहीं रह गई है। उनकी आवश्यकताएँ कम हैं। वह आत्म-सन्तुष्ट हैं और ईश्वरीय प्रेरणा पर, ईश्वरीय ज्ञान को फैलाने में परम आनन्द का अनुभव करते हैं।

डॉ. भरतलाल शर्मा अपने देश के अनेक क्षेत्रों में गए हैं और उन्होंने अपने श्रोताओं को अपनी वाणी और ज्ञान से प्रभावित किया है। डॉक्टर शर्मा लन्दन, हाँगकाँग, क्वालालम्पुर, सिंगापुर आदि विदेशी महानगरों में भी गए हैं। वहाँ उन्होंने आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को अपने उपदेश से आनन्दित एवं आलोकित किया है। उन्हें आज भी अनेक स्थानों से उपदेशार्थ आमन्त्रण प्राप्त हो रहे हैं। डॉ. शर्मा की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका सर्वत्र स्वागत हुआ है।

"रामजी की कृपा" उनकी नवीनतम पुस्तक है। उसमें ईश्वरीय मार्ग पर चलने की प्रेरणा और प्रकाश है। मेरा निश्चित मत है कि वह अपने पाठकों को उपयोगी एवं आलोकपूर्ण लगेगी। डॉ. शर्मा का जीवन, वाणी और साहित्य बहुत मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण हैं। उनमें लोकमंगल का भाव निहित है।

डॉ. शर्मा के प्रति मेरी शुभकामनाएँ और प्रणाम।

नवरात्रि—2008 —जगदीश तोमर

अध्यक्ष, विवेकानन्द केन्द्र, ग्वालियर (म.प्र.)

अध्यक्ष, मध्य भारत हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर (म.प्र.)

परमार्थ समर्पित व्यक्तित्व

डॉ. भरतलाल शर्मा मूलतः चिकित्सक हैं। उन्होंने सहस्त्रों जनों की अस्वस्थता दूर करके उन्हें आरोग्यता एवं नवजीवन प्रदान किया है। आज वह भौतिक दृष्टि से पीड़ित मानवता को ज्ञान एवं भक्ति का मंगल संदेश दे रहे हैं। डॉ. भरतलाल शर्मा जी ने स्वदेश एवं देश के बाहर एशिया और यूरोपीय देशों में अपने प्रवचनों से एक बड़े मानव समुदाय को प्रभावित तथा लाभान्वित किया है। उनके प्रेमी प्रशंसकों का एक बड़ा वर्ग उनके पीछे है और वे सहज ही उनके मित्र एवं मार्गदर्शक बन गए हैं।

डॉ. भरतलाल जी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें उनके प्रेरक प्रवचन संकलित हैं। उनकी वे कृतियाँ अपने ज्ञान-गाम्भीर्य एवं सुबोधता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय भी हुई हैं।

"**रामजी की कृपा**" उनकी एक नई पुस्तक है। वह अपने में आध्यात्मिकता का स्निग्ध आलोक समेटे हुए है। इसे पढ़कर सामान्य जन भी लाभ प्राप्त करेंगे तथा आत्मज्ञान एवं परमार्थ की ओर प्रवृत्त होंगे। डॉ. भरतलाल शर्मा जिस समर्पण एवं भक्तिभाव के साथ ज्ञान प्रसार में संलग्न हैं, वह वस्तुतः प्रशंसनीय है। मेरा विश्वास है कि वे अपने प्रवचनों एवं पुस्तकों से क्षुधित, तृषित एवं विपन्न मानवता को मुक्ति एवं आनन्द का नैवेद्य आजीवन भेंट करते रहेंगे। मैं उन्हें अपनी शत-शत शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ।

नवरात्रि—2008

ईश्वराधीन

स्वामी स्वरूपानन्द

रामकृष्ण आश्रम, ग्वालियर—474011

लेखक की ओर से

मेरे जीवन में माता-पिता, संत-महात्माओं, गुरुजी और ईश्वर का आशीर्वाद सदा बना रहा। छः वर्ष की आयु से गायत्री मंत्र का जाप और दस वर्ष की आयु से हनुमान चालीसा का पाठ निरंतर चल रहा है। बीस वर्ष की आयु में आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। "आत्मदर्शन" से असीम आनन्द का साक्षात्कार हुआ।

परमात्मा की कृपा से आदेश हुआ कि जिस अखण्ड आनन्द की अनुभूति तुम कर रहे हो उसे जन-जन तक पहुंचाओ। प्रभु-कृपा से मेरी प्रथम पुस्तक "ज्ञान से मुक्ति" सन् 1975 में प्रकाशित हुई थी।

मैंने धर्म-ग्रन्थों तथा संत-महात्माओं से जो पाया है और ईश्वर की प्रेरणा से जो प्रकट हुआ है वो आप सबके समक्ष है। मुझ अकिंचन की भेंट स्वीकार कीजिये। गल्तियों को क्षमा करते हुए मुझे आशीर्वाद दीजिए।

यह पुस्तक मेरे गुरु सत्चित्त आनन्द स्वरूप स्वामी आतमदास जी महाराज के चरणों में सादर समर्पित है।

"श्री लक्ष्मीनारायण भगवान की जय"

घर का पता :
डॉ. भरतलाल शर्मा
आनंद भवन, जगन गली
माधोगंज, लश्कर, ग्वालियर
म.प्र. (इण्डिया)
फोन—0751—2336095

क्लीनिक का पता:
डॉ. भरतलाल शर्मा
जीवाजीगंज, पुलिस चौकी
के सामने, लश्कर, ग्वालियर
म.प्र. (इण्डिया)
फोन—0751—2429475

अनुक्रमणिका

भगवान् राम की कृपा

मनुष्य के हृदय में जो अनेक जन्मों के सत्कर्म और दुष्कर्मों की वासना संचित रहती है, उसी के कारण संसार में आवागमन का चक्र लगा रहता है। सत्संग सुनने से बुरी-वासनाएँ दूर हो जाती हैं और तब मनुष्य ईश्वर प्राप्ति अथवा मुक्ति का पात्र होता है।

भगवान् ने चौरासी लाख योनियों का निर्माण किया है। उनमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य का जीवन है। वो इसलिए कि मनुष्य को स्वयं उत्तम बुद्धि दी है। उसे विवेक-शक्ति देकर उत्तम बनाया है एवं कर्म करने में स्वतंत्रता दी है। अन्य योनियाँ तो केवल भोग-योनियाँ हैं।

मनुष्य-शरीर को प्राप्त करके, स्वतंत्रता का शुभ अवसर नहीं खोना चाहिए। जो मनुष्य यह अवसर खो देता है उसके पछताने की कोई सीमा न होगी। संसार नाशवान है उसे सत्य समझकर उसके पीछे दौड़ना एवं अशुभ-इच्छाओं की कामना करना व्यर्थ की बातें हैं। जो मनुष्य संसार के नाशवान-पदार्थों और भोगों से प्रीति नहीं रखता बल्कि धर्म की पालना करता है वह उत्तम-पुरुष है।

संत तुलसी दास जी ने मानस में कहा है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा,
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा,
पाइ न जेहि परलोक संवारा॥

हे भाई! मनुष्य-शरीर बड़े भाग्य से मिलता है, इसकी प्रशंसा सब ग्रन्थों ने की है। यह शरीर देव दुर्लभ है। यह मनुष्य-शरीर मुक्ति पाने का उत्तम साधन है। मानव-जीवन में प्रभु को पाने के अथवा शान्ति को पाने के अनेक साधन हैं। एक तो मनुष्य का शरीर और दूसरा उसमें ज्ञान का दीपक रखा है। अब आप ही विचार करें, देर किस बात की है? अब आलस्य करने का क्या अर्थ है? पशु-पक्षियों के लिए कोई मंदिर, कोई सत्संग और कोई समझाने वाला नहीं है। मानव के लिए ये तीनों सर्व-सुलभ हैं। फिर भी अगर वो इनका उपयोग न करे तो किसका दोष माना जाएगा?

संत तुलसी दास ने कहा है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

जो लोग मनुष्य-शरीर पाकर भी भवसागर को पार करने का प्रयत्न नहीं करते वे निन्दा के योग्य और मन्द-बुद्धि हैं। ऐसे मनुष्यों को आत्महत्या के समान पाप लगता है।

मनुष्यों के पास बुद्धि और पुरुषार्थ नामक दो अद्वितीय-शक्तियाँ हैं, जिनसे पशु जगत वंचित है। विवेकी-पुरुष इन शक्तियों का उपयोग करके अपना मानव-जीवन धन्य कर सकते हैं। कुछ लोग संसार की माया के चक्कर में पड़कर अधार्मिक-जीवन जीने लगते हैं। जिसके फलस्वरूप उन्हें दुःख और शोक प्राप्त होता है। ऐसा होने से उनका विकास रुक जाता है।

जब इतिहास के किसी काल में इस प्रकार के धर्म

विरोधी आचरणों की बाढ़ तथा आसुरी शक्तियां के हाथ में विजयध्वज आ जाने से उस काल की जनता एकदम असहाय हो उठती है, तब परम् पिता परमेश्वर मानवों के बीच में प्रकट होकर धर्म को पुनः अपने आसन पर प्रतिष्ठित करते हैं।

यद्यपि अवतार का उद्देश्य होता है—पहला सज्जनों की रक्षा दूसरा दुर्जनों का संहार और तीसरा धर्म की रक्षा व धर्म की पुनः स्थापना। संतों का कहना है कि मानव अपनी बुद्धि का उपयोग करके सफलता को प्राप्त करे। हमें संतों के पास जाना चाहिए। वे हमें समझाएंगें कि हमारा जीवन धर्ममय और सदाचारी कैसे बनें?

भगवान् विष्णु ने आवश्यकतानुसार अनेकों अवतार ग्रहण किये हैं, जिनमें रामावतार और कृष्णावतार प्रधान समझे जाते हैं।

भगवान् राम ने महाराज दशरथ को अपना पिता बनाया और स्वयं आचरण करके मनुष्यों को शिक्षा दी कि माता-पिता के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही अपने भाईयों के साथ, मित्रों के साथ, शत्रुओं के साथ, अपने भक्तों के साथ, सेवकों के साथ और गुरुजनों आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इनकी शिक्षा का स्वयं आचरण करके श्रीराम ने सभी मनुष्यों को दी है।

सबसे बड़ी शिक्षा तो भगवान् श्रीराम ने इन्द्रिय-संयम की दी है। श्रीराम को सबसे प्रिय वह मनुष्य है, जिसने अपने मन को वश में करके इन्द्रियों को संयत रखा है। भगवान् श्रीराम माता-पिता की आज्ञा से देवलोक छोड़कर मनुष्यों को धर्म मार्ग की शिक्षा देने के लिए पृथ्वी पर

अवतरित हुए। भगवान् श्रीराम नहीं चाहते थे कि आततार्ईयों की शक्ति बढ़े। ऐसा होने से पृथ्वी पर पाप बढ़ेगा। जैसे-जैसे पाप बढ़ेगा वैसे-वैसे पृथ्वी का भार बढ़ता जाएगा। भगवान् को पृथ्वी से बड़ा स्नेह है। वे नहीं चाहते कि मेरी पृथ्वी दुःखी रहे। सज्जन-पुरुषों को सुखी करने के लिए, आततार्ईयों के नाश के लिए और धर्म की ध्वजा फहराने के लिए परमात्मा समय-समय पर पृथ्वी पर आते हैं और समस्त जीवों का हित करते हैं।

हनुमान जी भगवान् के अत्यन्त प्रिय हैं। रावण को मारकर जब भगवान् राम अयोध्या लौटे, तब उन्होंने युद्ध के सहायकों को पुरस्कार देकर पुनः अपने-अपने स्थानों पर लौटा दिया। परन्तु हनुमान जी को विदा नहीं किया, सदा के लिए अपने सानिध्य में रखा। रामजी ने धर्म की रक्षा के अनेक उदाहरण दिये हैं। उन्होंने मित्र के साथ निष्कपट व्यवहार करना सिखाया। सुग्रीव और विभीषण को राज्य और स्त्री दी। अर्थात् भगवान् रामजी का व्यवहार छोटा हो या बड़ा, सबके लिए एक जैसा है। जब उन्होंने सुग्रीव के साथ अग्नि के समक्ष मित्रता की और प्रतिज्ञा की कि "मैं बालि को मारकर तुम्हारी स्त्री और राज्य को वापस दिला दूँगा।" तब अपना काम होने से पहले उन्होंने मित्र का काम कर दिया। अपने वचन के अनुसार सीताजी की खोज कराने से पहले उन्होंने अपने मित्र को दिये वचन की रक्षा की। इसी तरह जब विभीषण रावण से अपमानित होकर श्रीरामजी के पास आया, तब रामजी ने लंका का राज्य पहले ही दे दिया। रावण-वध के बाद तो देना नाम-मात्र के लिए था।

एक बार रामजी से लक्ष्मण ने पूछा—माया क्या है? रामजी ने उत्तर दिया—*"मोर तोर सो माया"* "यह मेरा है और यह तेरा है।" इसी का नाम "माया" है। मेरे और तेरे के जाल में, जीव को माया उलझाती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि माया किसी की नहीं है। यहीं की माया यहीं रह जाती है। जो माया का दावा भरते हैं वे समय आने पर संसार से चले जाते हैं।

तू कहता है मेरा-मेरा।
किन्तु यहां कोई नहीं तेरा॥

माया का उपयोग करने की आज्ञा है किन्तु माया को मन में रखने की आज्ञा नहीं है। मन का स्वभाव बड़ा चंचल है। माया मिलने पर वो और ज्यादा चंचल हो जाता है। इस संसार में जो कुछ भी दिख रहा है वो सब माया है। माया तीन गुणों से बनी है। सतोगुण, तमोगुण और रजोगुण। माया को कोई नहीं पकड़ सकता। वो मात्र छलावा है। माया एक तरह से भ्रम है, धोखा है। ऐसा लगता है कि माया हमारी है। किन्तु वो आज तक किसी की नहीं हो सकी। जैसे छाया के पीछे दौड़ने में कुछ भी हासिल नहीं हो सकता वैसे ही माया के पीछे दौड़ना व्यर्थ है।

सहज के पुरुषार्थ से जो माया मिले वो ठीक है किन्तु उसके पीछे रात-दिन दौड़ना ठीक नहीं। जैसे रेत के जल से मृग की प्यास नहीं बुझती वैसे ही आप चाहे कितनी भी माया एकत्रित कर ले किन्तु शान्ति व तृप्ति नहीं मिल सकती।

संतजन कहते हैं कि माया में बड़ा आकर्षण है। वो सारे संसार को मोहित करती है। इसीलिए प्रायः सभी लोग माया के पीछे भागते-फिरते हैं। जिसको इससे बचना है वो

संत-महात्मा और गुरु की शरण में आ जाए। जो मनुष्य इनका उपदेश सुनता है उसके मन में माया प्रवेश नहीं कर पाती।

माया कहती है कि अगर मुझको सदा अपने घर में रखना चाहते हो तो संत, महात्मा, गुरु, माता-पिता और दीन-दुखियों की सेवा करो। बड़ो का मान-सम्मान करो। मुझ माया को अच्छे कामों में खर्च करो तो मैं, आप पर सदा प्रसन्न रहूंगी।

माया से पूछा गया कि तुमको क्या अच्छा लगता है? माया ने कहा—मैं नारायण की दासी हूँ। मैं प्रभु के भक्तों को देखकर प्रसन्न होती हूँ। प्रभु के भक्त, मेरे को बड़े प्रिय लगते हैं। जो लोग मेरे (माया) को पाकर मेरा (माया)दुरुपयोग करते हैं उनसे मैं नाराज रहती हूँ। और समय पाकर मैं वहाँ से चली जाती हूँ।

माया ने कहा, जो मुझे पाकर दान-पुण्य करता है। अर्थात् मेरा सही-सही इस्तेमाल करता है। मैं उस पर बहुत प्रसन्न होती हूँ। और उसका जीवन खुशियों से भर देती हूँ। मैं उसके जीवन में रुकावट नहीं बनती बल्कि उसे नारायण-भगवान् से मिलने में सहायता करती हूँ। माया ने कहा, मैं भगवान् नारायण से बहुत प्रेम करती हूँ क्योंकि वे मेरे स्वामी हैं और मैं उनकी दासी हूँ। जो भगवान् का सच्चा-दास होता है मैं उसे अपने पति-परमेश्वर से मिलाती हूँ।

जो मनुष्य प्रभु नारायण से प्रभु राम से प्रेम करते हैं। उन पर मैं (माया)बड़ी प्रसन्न होती हूँ। उनको मार्ग देकर ईश्वर से मिलाती हूँ।

गुरु विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा

हेतु वन में ले गए थे। उन्होंने यज्ञ की रक्षा की। यज्ञ सफल हुआ। गुरुजी उन्हें जनकपुर ले गए। वहाँ रात्रि में दोनों भाईयों ने उनकी बड़े प्रेम से सेवा की।

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाई।
गुरु पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥

राम और लक्ष्मण दोनों भाई भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोच के साथ गुरु से आज्ञा लेकर सिर झुकाकर गुरु विश्वामित्र के चरणों में जाकर बैठ गए। ये है भगवान् राम का दर्शन। वे बताना चाह रहे हैं कि गुरु का कितना मान-सम्मान होना चाहिए। काल को भयभीत करने वाले आज स्वयं भयभीत होने की लीला कर रहे हैं। गुरु के सामने मन में भय का होना बहुत जरूरी है।

"भय बिनु प्रीत न होइ गुसाई"

भय वाला मन ही गुरु का ज्ञान सुनता है और गुरु की आज्ञा पर चलता है। जिस मन में गुरु के प्रति प्रेम होता है। वही गुरु की हर बात को महत्व देता है। गुरु के सामने विनय का होना परम् आवश्यक है। विनय का अर्थ है, अहंकार के बिना वाली अवस्था। ये अवस्था बड़ी दुर्लभ है। क्योंकि अहंकार गुरु के ज्ञान को सुनने और समझने नहीं देता। "संकोच" एक अद्‌भुत गुण है। रामजी स्वयं अनंत होते हुए गुरु के सामने संकुचित-भाव से बैठे हैं। अर्थात् मैं कुछ नहीं हूँ आप सब कुछ हैं।

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई।
लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरूह लागी।
करत बिबिध जप जोग बिरागी॥

गुरु विश्वामित्रजी जब विश्राम करने लगे तब राम और लक्ष्मण दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे। जिनके दर्शन और स्पर्श पाने के लिए बड़े-बड़े महात्मा और वैराग्यवान भाँति-भाँति के जप और तप करते हैं। आज वे प्रभु अवतार लेकर गुरु की सेवा करके स्वयं को शिष्य सिद्ध कर रहे हैं।

रामजी की अद्भुत महानता देखकर मानव-मात्र का मस्तक स्वयं ही झुक जाता है। मानो रामजी कह रहे हो व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न होवे किन्तु गुरु के सामने सदा झुकता रहे। गुरु को धन नहीं मन चाहिए। संसार के पदार्थों से गुरु को प्रभावित मत करो। उन्हें प्रसन्न करना है तो उनकी सेवा करो और उनकी आज्ञाओं पर अपने जीवन को चलाओ।

मागी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥

रामजी केवट से नाव मांगते हैं किन्तु केवट नाव को नहीं लाता। बल्कि वह कहता है कि मैं आपका भेद जानता हूँ। आपके चरण-धूलि की बड़ी महिमा है। मैं आपके चरणों को धोने के बाद ही नाव पर बैठाऊँगा। रामजी उनकी बात सुनकर मुस्कराते हैं।

कृपा सिंधु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलंबु उतारहि पारू॥

कृपा के सागर रामजी ने केवट से कहा, हे भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय। जल्दी से पानी लाकर

मेरे पैर धो लो। हमें उस पार जाना है देर हो रही है। जिनका नाम लेने से मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है, आज वे केवट से गंगा पार कराने का आग्रह कर रहे हैं। यह है भगवान् राम की कृपा का स्वरूप।

गीधराज जटायु को जब रावण ने घायल कर दिया तब वह लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पड़ा। जटायु निरंतर रामजी का स्मरण कर रहा था। जिस ओर से रामनाम की आवाज आ रही थी। उस ओर रामजी गए उनके साथ लक्ष्मणजी भी थे। रामजी ने घायल जटायु को देखा। वह मरणासन्न की अवस्था में पड़ा था किन्तु वो मुख से निरंतर भगवान् रामजी का नाम ले रहा था। कृपानिधान प्रभु शीघ्र ही जटायु के पास जमीन पर बैठ गए और तुरन्त उस घायल जटायु को अपनी गोद में ले लिया। प्रभु रामजी, उसके सिर पर स्नेह का हाथ, निरंतर फेरने लगे। उससे पूछा कि तुम्हारी यह दशा किसने की है। जटायु ने कहा कि मेरी यह दशा रावण ने की है और वही जानकी का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर गया है।

जटायु ने कहा कि मैंने अपने प्राणों को आपके दर्शन होने तक रोककर रखा था। हे कृपा निधान! अब आप मुझे आज्ञा दे कि मैं अपने प्राणों का त्याग करूं। रामजी ने कहा कि हे जटायु तुम महान हो। तुमने मेरे लिए अपने शरीर को छिन्न-भिन्न करा लिया है। मैं तुम्हें पुनः वैसा ही स्वस्थ कर सकता हूँ।

जटायु ने कहा—हे प्रभु! इस नश्वर-शरीर को रखने से कोई लाभ नहीं है। एक तो आप पारब्रह्म परमेश्वर का दर्शन मिला। और आपकी गोद मिली और आपका स्नेह

भरा हाथ मिला और आपके नेत्रों से मुझ पर करुणा बरसी। अन्त समय का स्नान, मुझे आपके द्वारा मिल रहा है। आपके नेत्रों से जो गंगा और यमुना बह रही है। उनके जल से मेरा स्नान हो रहा है।

रामजी ने कहा—हे गीधराज, "जो दूसरे का हित करता है, उसके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।" तुमने अपने प्राणों की चिंता न करते हुए, श्रेष्ठ कर्म किया है, इसलिये तुमको सद्गति मिलेगी। आप शरीर छोड़कर मेरे धाम में जाएंगे। मैं आपको क्या दे सकता हूँ? आप तो स्वयं पूर्ण काम हैं। आप योगी हैं, आपने अपने प्राणों को रोककर रखा। पक्षी होते हुए भी बुद्धिमान हैं। और आप परम-त्यागी हैं। सबसे श्रेष्ठ और प्रिय शरीर होता है। आपने दूसरे के हित के लिए उसे भी बलिदान कर दिया। आप महान् वीर हैं। यह जानते हुए भी कि आपके सामने अत्यन्त वीर योद्धा है। अपनी मृत्यु का परिणाम जानते हुए भी आपने उससे अंतिम-क्षणों तक युद्ध किया। हे जटायु! तू धन्य है। जटायु गीध का शरीर त्यागकर परम-धाम को चला गया। रामजी और लक्ष्मण जी ने अपने हाथों से जटायु के शरीर का दाह-कर्म किया। यहाँ पर भी रामजी की कृपा का दर्शन होता है। जटायु पक्षी जो मांसहारी था। किन्तु उसने परहित के लिये आत्मोत्सर्ग किया और कृपा सिन्धु प्रभु ने उसे अपनी पवित्र-भक्ति और अपना परम्-धाम प्रदान किया।

शबरी जाति से भीलनी थी। विवाह के समय उसके पिता ने अनेक पशुओं को बलि देने के लिये बाँध रखा था। जब यह बात शबरी को मालूम पड़ी, तब उसे बड़ा दुःख

हुआ कि मेरे विवाह के कारण इतने निरीहमूक पशुओं को मार दिया जाएगा। अगर मैं विवाह न करूँ तो अनेक पशुओं की जान बच जाएगी। ऐसा मन में विचार करके वो अपने महल से रात्रि में भाग गई। उनके पिता राजा ने अपनी पुत्री को बहुत ढूँढ़ा। किन्तु वह नहीं मिली।

शबरी जी घने जंगल में प्रवेश कर गई थी। वहाँ संतों के संग में रही। बड़े सबेरे उठकर आश्रमों में झाड़ू लगाती थी। मुनि मतंगजी उनकी सेवा से बड़े प्रसन्न हुए। वे बोले हे शबरी! तू महान् है तुमने बिना किसी स्वार्थ के बहुत सेवा की है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि एक दिन अवश्य ही भगवान् रामजी तेरी कुटिया में आएंगें।

शबरी माता प्रतिदिन राम नाम का जाप करती रही। रामजी की प्रतीक्षा में कुटिया का द्वार बन्द नहीं करती थी। पता नहीं कब प्रभुजी आ जाएं। वो दूर-दूर तक रोज झाड़ू लगाती थी कि मेरे प्रभु को कोई कंकड़-पत्थर न चुभें।

एक दिन रामजी और लक्ष्मण जी उसके द्वार पर आये। शबरीजी ने उन्हें भीतर बुलाकर बड़े प्रेम से बैठाया। उनके आगे फल रखे। शबरी, प्रभु को पाकर प्रेम में डूब गई। वो बेर को पहले चखकर देखती थी कि बेर कहीं कड़वा या खराब तो नहीं। जो बेर मीठा होता था वो अपने रामजी को खिलाती थी।

शबरी बड़े प्रेम से रामजी को सतत् निहार रही थी। बिना पलक झपकाए, प्रेम में डूबकर रामजी के रूप को देख रही थी। मानो रामजी को प्रेम के द्वारा वो पी जाएगी। रामजी उसका प्रेम देखकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। लक्ष्मण जी भक्त और भगवान् का प्रेम देखकर आश्चर्य कर रहे थे।

शबरी बेर को चख-चखकर रामजी को खिला रही थी। और वे उनके झूठे बेर बड़े प्रेम से खा रहे थे। लक्ष्मणजी यह सब देखकर हैरान थे। रामजी, शबरी को देख रहे थे और शबरी, रामजी को देख रही थी। रामजी ने बड़े प्रेम से बेर खाए। उन्होंने शबरी से कहा— आज मुझे माता कौशल्या की याद आ गई। जितने प्रेम से तुमने मुझे बेर खिलाए हैं उतने ही प्रेम से मुझे वो भोजन खिलाती थी।

शबरी ने दो बेर चखकर लक्ष्मण जी को दिये। उन्होंने झूठे बेरों को नहीं खाया बल्कि मौका पाकर दरवाजे से बड़ी जोर से बड़ी दूर फेंक दिये। वे बेर द्रोणाचल-पर्वत पर जा गिरे। आगे-चलकर वही बेर संजीवनी-बूटी बन गए। समय आने पर लक्ष्मण जी मूर्च्छित हुए और फिर उन्हीं का सेवन करने से वे स्वस्थ हुए।

शबरी ने कहा—हे प्रभु! मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ? एक तो मैं स्त्री वो भी नीच जाति की हूँ और उस पर भी मैं अत्यन्त बुद्धिहीन हूँ। इस पर रामजी ने कहा—मैं जाति, कुल, धर्म, धन, बल और चतुराई आदि बातों को नहीं मानता। मैं तो केवल भक्ति के सम्बन्ध को मानता हूँ। रामजी ने शबरी को नवधा-भक्ति का स्वरूप सुनाया।

रामजी ने कहा—हे शबरी! मैं तुमको नौ प्रकार की भक्ति सुनाता हूँ। तुम उसे सावधान होकर मन लगाकर सुनना।

पहली भक्ति है—संतों का संग करना और उनका सत्संग सुनना।

दूसरी भक्ति है—मेरे कथा प्रसंगों को प्रेम से सुनना।

तीसरी भक्ति है—अभिमान को त्यागकर गुरु के चरणों

की सेवा करनी चाहिये।

चौथी भक्ति है—छल-कपट को छोड़कर ईश्वर के गुणों का गान करना चाहिए।

पाँचवीं भक्ति है—जो वेदों में प्रसिद्ध है कि ईश्वर के नाम का जाप दृढ़-विश्वास के साथ करना चाहिये।

छठवीं भक्ति है—इन्द्रियों को वश में करके उत्तम-चरित्र का निर्माण करना और वैराग्य को धारण करके संतों जैसा आचरण करना चाहिये।

सातवीं भक्ति है—सारे संसार को सम-भाव से देखते हुए, भगवान् से अधिक संतों का मान करना चाहिये।

आठवीं भक्ति है—जो कुछ मिले उसी में संतोष करना और दूसरों के दोषों को नहीं देखना चाहिये।

नौवीं भक्ति है—सरलता को धारण करके और छल-कपट को त्यागकर, सबसे व्यवहार करना चाहिये।

रामजी ने कहा, नवधा-भक्ति परम्-कल्याणकारी है। इनमें से अगर कोई, किसी एक भक्ति का भी सहारा ले लेता है तो वो भव से पार हो जाता है।

मन और बुद्धि का समर्पण

सब कुछ भगवान् के लिये करना ही मन, भगवान् को देना है। अगर 'मैं' आगे आयेगी तो मरण होगा। सब कुछ तेरा है यह भाव आयेगा तो तरण होगा।

मन और बुद्धि का समर्पण भगवान् में करो। मन और बुद्धि की चलन, संसार में मत रखो। इनमें भगवत्-भाव

भर दो। मन और बुद्धि आदि सब कुछ भगवान् का है, जिसका जो है, उसको, वह दे दो, नहीं तो खटपट होती रहेगी।

मन और बुद्धि पहले तो जल्दबाजी में आकर संसार से रम (समा) जाते हैं। संसार उनको पति, पत्नी, पुत्री, पुत्र, मकान, दुकान और धन आदि दिखाकर कहता है कि ये सब तुम्हारा है प्राणों के निकलते समय, संसार कहता है कि तुम्हारा यहाँ पर कुछ भी नहीं है। बल्कि तुम जिस शरीर में रह रहे हो वह भी खाली करो।

मन और बुद्धि दोनों को भगवान् में अर्पित करो। क्योंकि ये भगवान् में ही समा सकते हैं। संसार को सौंपोगे तो वह इनको बार-बार निकाल कर बाहर कर देगा। अब सवाल यह है कि इनको भगवान् को कैसे सौंपें? क्योंकि ये तो उस तरफ जाते ही नहीं। अभ्यास करो, बार-बार दुहराओ—बार-बार दुहराओ कि जैसे भजन और मंत्र याद करने के लिए बार-बार कहते रहते हैं एमा करने से वह याद हो जाता है। यदि तुमने अपना घोड़ा किसी के हाथ बेच दिया है और वह भागकर आ गया तो फिर जहाँ बेचा है, उसे वहाँ पहुँचा दो। फिर भागकर आ जाये तो फिर पहुँचा दो। तो धीरे-धीरे जिसके हाथ बेचा है उसके खूँटे पर, उसके घर पर रहने की आदत पड़ जायेगी। जिसके मन को भगवान् का भजन करने की आदत पड़ गई है वह मनुष्य बहुत ज्यादा भाग्यशाली है।

मन और बुद्धि वैसे भी भगवान् को समझने में असमर्थ हैं। क्योंकि इनकी तो सीमा है किन्तु परमात्मा तो असीम है। अन्त कभी भी अनंत को नहीं पा सकता। फिर क्या

किया जाय? उपाय यह है कि मन और बुद्धि का परमात्मा में विसर्जन कर दो। बिना समर्पण के वे परमात्मा को नहीं पा सकते। बीज जब तक मिटेगा नहीं, तब तक फूल कैसे बन सकता है। मन और बुद्धि की उड़ान को परमात्मा में विश्राम दो नहीं तो बहुत काल तक भटकना पड़ेगा। परमात्मा तो मंजिल है और मंजिल के सामने सारे साधनों को रख देना चाहिए। जो मनुष्य मन और बुद्धि को साथ लेकर घूमते रहते हैं उनकी माया कभी भी समाप्त नहीं होती। मन और बुद्धि, भगवान् को चढ़ाने के लिये दो सुन्दर फूल हैं। इनको भगवान् को अर्पण करके अपना जीवन सफल करो।

हे प्रभु मुझे दुःख दो

हे प्रभु मुझे संसार का सुख नहीं दुःख चाहिए। क्योंकि तुम्हें कोई सुख में नहीं बुलाता। माता कुन्ती ने भी भगवान् से कहा था कि मुझे दुःख दो। जब परिवार में दुःख आता है तभी सब एक हो जाते हैं और परस्पर प्रेम दिखाई देता है। छोटे भाई को दुःख हो तो बड़े भाई का प्रेम दिखाई देता है।

हे प्रभु! मुझे वैभव, सुख और मुक्ति नहीं चाहिए। मेरी एक ही माँग है कि तेरा नाम स्मरण करूँ, तेरा काम करूँ और धर्म के मार्ग पर चलूँ। हे प्रभु, मुझे बैल जैसा जीवन नहीं चाहिये। आज जन्म हुआ, खुशियाँ हुई। बालक पाठशाला गया। आगे चल कर विवाह हुआ, परिवार बढ़ा। परिवार की पूर्ति हेतु खूब दौड़ा। फिर शरीर बूढ़ा हुआ,

बीमार हुआ और अंत में प्राण निकल जायें। जो आज था, वह कल (काल) का हो गया। एक सुन्दर फ्रेम में जड़ दिया गया। मैं ऐसा पशु जैसा जीवन नहीं चाहता हूँ।

हे प्रभु! आप मुझे ऐसी बुद्धि दो जिससे मैं सबके काम आ सकूँ। मुझे दूसरा कोई विचार ही न आवे। मैं उठते-बैठते एक ही विचार करूँ कि मेरा प्रभु, कौन-कौन से काम प्रसन्न होता है, और मैं वही काम वही सेवा दौड़-दौड़कर करूँ। हे प्रभु! आप सदा मुझसे, मेरे हित का और अपनी प्रसन्नता वाला कार्य करवाना।

हे प्रभु! आप मुझे सत्संग का अमृत पिलाना जिससे विषय विकारों का विष मिट सके। हे प्रभु, आप मुझ पर ऐसी कृपा करना, जिसमें मैं आपका नाम, दिन-रात जप सकूँ। मैं आपका नाम इतना लूँ कि अपना तन, मन, धन और नाम भूल जाऊँ। मैं आपका नाम इतना लेना चाहता हूँ कि मेरे मन से जगत मिट जाए और जगदीश्वर प्रकट हो जायें। हे प्रभु, मैं चाहता हूँ कि दिन-रात मैं तेरा काम (निष्काम-सेवा)करूँ। अपने सुख और परिवार के लिए तो सभी लोग काम करते हैं, किन्तु मैं चाहता हूँ कि मैं अपना जीवन आपकी प्रसन्नता में व्यतीत करूँ। किसी लड़के को माँ एक रुपया देती है कि जा मेला देख आ। लड़का मेले में जाकर गन्ने का रस पीता है, झूले में बैठता है या मिठाई और पकौड़ी खाकर वापस आता है। परन्तु एक लड़का ऐसा है जो सोचता है कि माँ ने मुझे रुपया दिया है, तो माँ के लिए क्या ले जाऊँ? तब उसे ध्यान में आता है माँ नित्य माला फेरती है, उसकी माला टूट गई है, इसलिए माँ के लिए माला ले जाऊँ। वह माला ले जाता है और माँ को

देता है इस समय माँ को कैसा लगता होगा? यह तो माँ बनकर ही मालूम हो सकता है।

हे प्रभु, मैं संसार के बाजार में आया हूँ, मैंने लाखों रुपये कमाये हैं। अब मैं चाहता हूँ कि तन, मन और धन को तेरी प्रसन्नता पर निछावर करूँ।

हे प्रभु! आप मुझे सज्जनों का, संतों का संग प्रदान करें, क्योंकि दुष्टों के संग से मैं बिगड़ जाऊँगा। हम तो अच्छे होते हैं किन्तु दुष्ट लोगों के संग से हमारे सद्गुण मिट्टी में मिल जाते हैं। कर्ण कितना महान् और तेजस्वी था। उसके पास अनन्त गुण थे। किन्तु दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि के संग से उसकी हार और उसका मरण हुआ।

सदैव अपने संग का ध्यान रखें क्योंकि संग ही डुबोता है और संग ही तारता है।

सच्चा पंडित कौन है?

तत्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्व कर्मणाम्।
उपायज्ञः मनुष्याणां एतत् पंडित लक्षणम्॥

पंडित वह है, जो सारे कर्मो का योग कर सके। खाते-पीते उठते-बैठते और जागते-सोते आदि सब कर्मों को भगवत्-अर्पण करें। क्योंकि उसके सारे कर्म प्रभु सेवा है। वह अपने लिए कोई कर्म नहीं करता। बल्कि वह जो करता है भगवान् की भावना से करता है। अपने मन में कर्ता भाव रखना, यह बुद्धिहीनता की निशानी है। पंडित का अर्थ है जिसने सब कुछ अच्छी तरह समझ लिया हो।

पंडित स्वंय को कर्ता नहीं मानता। वह प्रभु को कर्ता मानता है। सच्चा पंडित प्रभु और शास्त्रों के विचारों को अपने विचार बना लेता है।

जो ज्ञान, कर्तापन का भाव बढ़ाता है, उस ज्ञान का त्याग होना चाहिए। जिस कार्य से संसार का भाव मिटे और प्रभु का साथ हो वह कार्य होना चाहिये। जो अपने समस्त कर्मों को प्रभु के साथ जोड़ दे, वही सच्चा पंडित है।

श्री गुरु नानक जी का उपदेश

1. योगी पावै योग सों, ज्ञानी लहै विचार।
   नानक पावै भक्ति सों, जाको प्रेम अधार॥
2. बिरध भयो सूझै नहीं, काल पहुँच्यौ आन।
   कह नानक नर बावरे, क्यों न भजै भगवान्॥
3. पतित उधारन भय हरन, हरि अनाथ के नाथ।
   कह नानक तिहिं जानिये, सदा बसत रघुनाथ॥
4. भय नाशन दुर्गति हरन, कलि मंहि हरि को नाम।
   निशिदिन जो नानक भजै, सफल होंहिं तिंहि काम॥
5. जिह्वा गुरु गोविन्द भजे, कर्ण सुनौ हरि नाम।
   कह नानक सुन रे मना, परहिं न यम के धाम॥
6. जो सुख को चाहे सदा, शरण राम की लेह।
   कह नानक हरि भक्त बिन, जीवन कौने काम॥
7. मन माया में फँसि रह्यो, बिसरयौ गोविन्द नाम।
   कह नानक सुन रे मना, दुर्लभ मानुष देह॥

8\. जन्म जन्म भरमत फिरयौ, मिटयौ न यम कौ त्रास।
कह नानक हरि भज मना, निर्भय पावहि बास॥
9\. संग सखा सब तज गये, कोउ न निभयो साथ।
कह नानक यहि बिपति में, एक टेक रघुनाथ॥

संत दादू दयाल

संत दादू दयाल प्रमुख संतों में से एक थे। लोग उनके उपदेश सुनने के लिए दूर-दूर से आते थे। शहर के कोतवाल ने जब उनकी प्रसिद्धि सुनी तो उनके मन में दादूजी के दर्शन करने की इच्छा हुई। कोतवाल घोड़े पर चढ़कर दादू की कुटिया की ओर चल पड़ा। कुटिया के रास्ते में उसे एक अधेड़-सा व्यक्ति दिखाई दिया, जो सिर पर साफा बाँधे था और दराती से रास्ते में उगे झाड़-झखाड़ को साफ कर रहा था।

कोतवाल ने बड़े अक्खड़ तरीके से उससे पूछा—क्या तुम जानते हो, दादू संत कहाँ रहते हैं? संत अपने काम में तल्लीन थे, उन्होंने सुना नहीं। कोतवाल गाली गलौज करता घोड़े से उतरा और उस व्यक्ति पर चाबुक फटकार कर बोला—'अबे ओ, सुनता नहीं क्या? मैं शहर का कोतवाल तुमसे कुछ पूछ रहा हूँ, जवाब क्यों नहीं देता? उस व्यक्ति ने मुड़कर कोतवाल को देखा और मुस्करा दिया।'

कोतवाल का पारा सातवें आसमान जा पहुँचा, उसने चाबुक से उसकी पिटाई की फिर भी वह बिना कुछ बोले सिर्फ मुस्कराता रहा, तो वह उसे धक्का देकर घोड़े पर जा

बैठा और आगे चल दिया। कुछ देर चलने पर एक दूसरा व्यक्ति दिखाई दिया। कोतवाल ने पूछा, क्या तुम्हें पता है, दादू बाबा कहाँ मिलेंगे? वह व्यक्ति बोला—जिधर से आप आ रहे हैं वहीं रास्ते में बैठे वे झाड़ियाँ काट रहें हैं। कोतवाल शर्म से पानी-पानी हो गया। उल्टे पाँव लौटा और उस संत के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। दादू ने उसी तरह मुस्कराते हुए कहा—"भाई क्षमा किस बात की? तुमने कोई अपराध ही नहीं किया। जब कोई आदमी दो टके की मिट्टी की हाँडी खरीदता है तो उसे भी ठोक बजाकर अच्छी तरह परखता है। तुमने भी मुझे मिलने से पहले थोड़ा ठोक-पीटकर परख लिया तो क्या हो गया।" कोतवाल संत दादू की ओर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपलक निहारता रहा।

लोभ पाप का बाप

गुरु नामदेव एक बार धर्म का प्रचार करते हुए बगदाद पहुँच गए। उस समय वहाँ जिस खलीफा का शासन था, वह बड़ा निर्दयी और अत्याचारी था। जनता को लूटकर अपना खजाना भरता था।

एक दिन खलीफा, गुरु नामदेव के दर्शन करने आया। उनके आने से पहले नामदेव ने दस छोटे-छोटे कंकर इकट्ठे करके अपने पास रख लिए थे। खलीफा ने वहाँ आकर पूछा कि ये कंकर किसलिए रखे हैं? नामदेव ने कहा इन्हें मैं आपके पास अमानत के रूप में रखना चाहता हूँ। खलीफा ने पूछा—वापस कब लोगे? नामदेव ने कहा—कयामत

के दिन, खुदा के दरबार में, जब आप और हम मिलेंगे तब आप इन्हें वहाँ ले आना, मैं आपसे ले लूँगा।

खलीफा बोला, कयामत के पवित्र दिन यह वस्तु साथ में नहीं लाई जा सकती। नामदेव ने कहा, मैं जानता हूँ कि कयामत के दिन खुदा के सामने खाली हाथ खड़े होकर अपने-अपने कर्मों का हिसाब देना पड़ता है। परन्तु आपने जो धन, प्रजा पर अत्याचार करके इकट्ठा किया है, उसे तो आप अवश्य ही साथ में लेकर जाएगें? जब इतना साथ में लेकर जाएगें तो ये मेरे दस कंकर भी साथ में लेते आना। खलीफा को अपने किए पर बहुत पश्चाताप हुआ और वह आगे के लिए सुधर गया।

निर्मल उपदेश

1. काया साधो, नाम जपो, मन को मत भटकाओ।
2. सोओ कम, बोलो कम और भोजन कम खाओ।
3. विषय वासना सारी त्यागो, अज्ञान शीघ्र भगाओ।
4. देह भावना अमंगल है, नित्य आत्म तीर्थ नहाओ।
5. काम, क्रोध, लोभ और मोह से अपनी प्रीति हटाओ।
6. ज्ञान, भक्ति और वैराग्य अपने हृदय में बसाओ।
7. धन, स्त्री और पुत्र की ममता से मन को बचाओ।
8. माता-पिता और गुरु की शिक्षा को सदा अपनाओ।
9. राम-कृष्ण-गोविन्द के प्रेम से सदा गीत गाओ।
10. भूत, भविष्य की चिन्ता त्यागो, वर्तमान सुख पाओ।
11. सावधान होकर अमृत पिओ, अज्ञान शीघ्र मिटाओ।

12. पूर्ण को पूर्ण समझकर देखो सारे भरम मिटाओ।
13. ज्ञान से मन को मारो फिर अटल ध्यान लगाओ।
14. अंतर बाहर एको-देखो सदा आत्म दर्शन पाओ।
15. परमात्मा को पाना है तो सत्य और धर्म अपनाओ।

आप आत्मा हैं

आत्मा का वर्णन गीता में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। हमारा शरीर पाँच तत्त्वों से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। यह भौतिक शरीर नाशवान है। कभी न कभी इसका अंत निश्चित होगा अर्थात् यह शरीर नाशवान है। इस शरीर में स्थित जो आत्मा है वह अविनाशी है। इस अविनाशी आत्मा का कोई भी नाश करने में समर्थ नहीं है।

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है या जो इसको मरा हुआ मानता है। वे दोनों ही वास्तव में सत्य को नहीं जानते हैं। क्योंकि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न ही किसी के द्वारा मारा जाता है। आत्मा का न तो जन्म होता है और न ही मरण होता है। क्योंकि आत्मा अजन्मा है, नित्य है, सनातन है और पुरातन है।

शरीर के मरने पर भी यह नहीं मारा जाता। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही यह जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को प्राप्त होता है।

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग

जला नहीं सकती, इसको जल गला नहीं सकता और इसको वायु सुखा नहीं सकता। क्योंकि यह आत्मा नित्य है, सबमें व्याप्त है, निर्विकार है, अचल है और सनातन है।

यह आत्मा अखंड है, अजर-अमर है और अद्वितीय है। इस आत्मा को कोई महापुरुष आश्चर्य से देखता है और कोई महापुरुष इसका वर्णन आश्चर्य से करता है और कोई अधिकारी इसको आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई-कोई इसको सुनकर भी नहीं जान पाता।

यह आत्मा हमारा और आपका निज स्वरूप है। अर्थात् अपना आपा है। वास्तव में हम सब आत्मा हैं किन्तु भूल के कारण, अज्ञान के कारण अथवा विस्मरण हो जाने से हम आत्मा होते हुए भी स्वयं को शरीर मान बैठे हैं। यह भूल ही हमारे अनेक दुःखों का कारण बनी हुई है। वैसे देखा जाए तो हमारा आत्मा आनन्दरूप है और प्रेम रूप है। ज्ञान के द्वारा जैसे-जैसे हम स्वयं को जानते जाएगें वैसे-वैसे हम आनंदमय और प्रेममय होते चले जाएगें।

हम राजा होते हुए भी भूल के कारण स्वयं को भिखारी मान बैठे हैं। राजा और भिखारी के बीच में भूल है। इस भूल को गुरु के पास जाकर मिटाया जा सकता है। हमें आलस्य को छोड़ना होगा। आलस्य करते-करते बहुत समय बीत चुका है। आत्मा को न जानने का अर्थ है कैद में बीतता हुआ जीवन।

आत्मा सदा स्वतंत्र है, वह सदा निर्भय है, उसमें कहीं भी भय नहीं है। आत्मा को जानने के बाद जन्म और मृत्यु का कष्ट ही मिट जाता है। हम राजा के बेटे राजा है, किन्तु संसार की भीड़ में खो गए हैं। गुरु बड़े दयालु होते हैं। नजर

से निहाल कर देते हैं। गुरु की नजर पड़ते ही भिखारी को भी राजा बना देते हैं।

आत्मा में अनेक गुण हैं किन्तु उसमें एक गुण बड़ा उत्तम है और वह है 'तृप्ति' का गुण। आत्मा सदा तृप्त है भरी हुई है। उसमें कहीं से भी, कुछ भी नहीं जा सकता। आत्मा को किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है। अगर जरूरत है तो मन को है क्योंकि मन कभी तृप्त नहीं होता। जिस दिन मन तृप्त हो जाएगा जिस दिन वह शान्त हो जाएगा उस दिन मन, मन नहीं रहेगा, बल्कि आत्मा हो जाएगा। आत्मा सर्व बंधनों से मुक्त, आकाश ही अनंतता को छू रही होती है। आत्मा को बाहरी पदार्थों की जरूरत नहीं। वह अपने आपमें मग्न है। उसे बाहरी सुख और आनंद की जरूरत नहीं है। आत्मा स्वयं आनंद रूप है।

मन जब संसार से जुड़ता है तो दुःखी हो जाता है और जब आत्मा से जुड़ता है तो आनंदमय हो जाता है। वह संसार से इसलिए जुड़ता है क्योंकि उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आत्मज्ञान के लिए सद्गुरु के पास जाना बहुत जरूरी है। क्योंकि वह तत्त्व ज्ञान का सागर हैं। जैसे-जैसे सत्य समझ में आने लगता है, वैसे-वैसे आत्मा का आनंद अनुभव में आने लगता है।

भगवान् गणेश जी

एक कथा है—विवाह गणेश का पहले हो या कार्तिकेय का, इस पर निर्णय लिया जाना था। शंकर-पार्वती जी ने तय किया कि जो सारे संसार का चक्कर लगाकर पहले लौट आएगा उसका विवाह पहले किया जाएगा। कार्तिकेय तुरन्त दौड़ चले। गणेश अपने भाई को जाता देखते रहे। गणेश जी का वाहन चूहा है, उनके लिए तेज दौड़ना असंभव था। उन्होंने अपने माता-पिता शंकर-पार्वती की परिक्रमा की।

कहीं-कहीं यह भी चर्चा आती है कि उन्होंने रामनाम लिखकर एक चक्कर पूरा लगाया और शिव-पार्वतीजी से कहा—मैं ब्रह्मांड का चक्कर लगाकर प्रथम आ गया हूँ। जब पूछा गया, कैसे? तो उत्तर था—माता-पिता के रूप में शिव-पार्वतीजी मेरे लिए ब्रह्मांड स्वरूप हैं। यही तर्क श्रीराम नाम के लिए भी था। शिव-पार्वती ने गणेश के तर्क से प्रसन्न होकर न केवल प्रथम विवाह कराया बल्कि उनकी इस विवेक, तर्क और त्वरित बुद्धि के कारण देवताओं में अग्रपूजा का आशीर्वाद भी दिया।

जो भी साधन आपके सामने है। उनका उपयोग विवेकपूर्वक होना चाहिए। समय के साथ-साथ तीक्ष्ण बुद्धि से कार्य को पूरा कर लेना भी एक योग्यता है। अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और परिश्रम इन दोनों का संतुलन बड़ा आवश्यक है। अनेक बार हम बहुत परिश्रम करते हैं, किन्तु सफल नहीं हो पाते और कभी-कभी परिश्रम कम करें और विवेकशील बुद्धि का उपयोग कर जाएं तो सफलता

हाथ लग जाती है। भगवान गणेशजी ने हमें यह संदेश दिया है कि हमारे केन्द्र में कौन-सी वस्तु का विशेष महत्त्व है। उस बात पर ध्यान देने से निशि्चत ही सफलता मिलती हैं।

जीवन में आगे बढ़ो

शास्त्रों में लिखा हे—चरैवेति-चरैवेति अर्थात् चलते रहो-चलते रहो, कहा गया है। बैठने वाले की किस्मत बैठ जाती है। सोने वाले की किस्मत सो जाती है, और चलने वाले की किस्मत चमकने लगती है। इसलिए सदा चलते रहो, सदा चलते रहो।

जीवन में आगे बढ़ाने है तो आलस्य का त्याग करके निरन्तर आगे बढ़ते रहो। एक संत ने सुनाया कि एक लकड़हारा था। उससे कहा गया कि अगर तुम्हें सफलता प्राप्त करनी है तो वन में सदा आगे ही बढ़ते रहना। एक दिन लकड़हारा वन में दूर निकल गया। उसे वहाँ चंदन का जंगल मिला। वह बहुत खुश हुआ और धनवान बन गया। कुछ दिनों के बाद उसने सोचा कि मुझे तो और आगे बढ़ने के लिए कहा गया था। वह वन में ओर आगे गया। वहाँ उसे चाँदी की खान मिली। वह और भी सम्पन्न हो गया। कुछ दिनों बाद वह और आगे गया। वहाँ उसे सोने की खान मिली। उसने अपने धन को परोपकार में लगाना प्रारम्भ कर दिया। उसका बड़ा नाम होने लगा। निर्धन व्यक्तियों को उससे बड़ा लाभ मिला। कुछ दिनों के बाद वह और

आगे गया। वहाँ उसे हीरे मोतियों की खान मिली। उसने अपने जीवन में खुद भी सुख लिया और समाज को भी सुख दिया। जीओ और जीने दो का सिद्धान्त मानव को सफल बनाता है। चलते रहो-चलते रहो एक न एक दिन किस्मत अवश्य चमकेगी।

मन की शान्ति

गुरु महाराज से पूछा गया। मन की शान्ति कैसे मिलेगी। मन जब तक संसार के पदार्थ माँगेगा तब तक शान्ति कैसे मिल सकती है? संसार, पदार्थ और सुख परिवर्तन शील है। मन को परिवर्तन अच्छा नहीं लगता। वो चाहता है स्थाई-आनन्द मिले। अखण्ड-आनन्द संसार में है ही नहीं।

अखण्ड-आनन्द का स्वामी आत्मा है। वो आत्मा इस शरीर रूपी घर में बैठा है। उस आत्मदेव का दर्शन तभी हो सकता है, जब मन शान्त होगा। मन को शान्त करने के लिए, 'ज्ञान' महाऔषधि है।

ज्ञान-गंगा से जन्म-जन्मों की मैल मिट सकती है। आत्मा के ऊपर अशान्त-मन का पर्दा चढ़ा हुआ है। जब मन का अज्ञान मिटता है तब यही मन, आत्मा में परिवर्तित हो जाता है। इस जीव का यही परम-लक्ष्य है कि वो जीव से शिव रूप में परिवर्तित हो जाऐं।

हम मानव-जीवन लेकर परम-तत्त्व को पाने आए हैं। निर्मल-मन जब ध्यान करेगा तब उस परम्-तत्त्व-परमात्मा का अनुभव होगा।

ध्यान रहे कि मन की शक्ति ज्ञान है। ज्ञान मिलेगा तो प्रभु दूर नहीं। ग्रन्थ और गुरु मनुष्य के लिए बने हैं। सारे सत्संग, उपदेश आदि शिक्षाएं हमारे जीवन को सफल बनाने के लिए हैं। जैसे मन लगाकर धन को कमाते हैं। वैसे ही प्रेम से प्रभु का स्मरण करना चाहिए।

प्रभु के चरणों में चार-फूल प्रेम से चढ़ाए—

1. इबादत, माने प्रभु को बार-बार वन्दन करना।
2. रियाजत, माने सेवा अर्थात् सबको अपना जानते हुए सबकी भलाई करनी चाहिए।
3. सखावत, माने दान। दीन-दुखियों और जरूरतमंदों में अपने धन का उपयोग करना चाहिए।
4. शहादत, माने समर्पण। प्रभु की आज्ञा में अपने जीवन को चलाना चाहिए। मन, वचन और कर्म को प्रभु की प्रसन्नता में लगा देना चाहिए। तन, मन और धन को प्रभु के चरणों समर्पित करना सबसे श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

गुरु महान् है

सिकन्दर को पिता ने पढ़ने के लिए मदरसे भेजा। एक दिन उस्ताद ने सिकन्दर से अपना जूता उठवाया। अचानक उसके पिता आ गए। उन्होंने सिकन्दर को जूता उठाते हुए देख लिया। सिकन्दर जब घर आया। पिता ने कहा, कल से तुम पढ़ने मत जाना।

सिकन्दर पढ़ने नहीं गया। उस्ताद ने चार लड़के भेजे। जाओ सिकन्दर को जबरदस्ती पकड़कर ले आओ। उनके पिता से कहना कि उस्ताद चाहे तो शार्गिद को जमीन से उठाकर आकाश की बुल्दियों पर पहुँचा सकता है। उस्ताद की हस्ती पिता से ऊँची है।

सिकन्दर के पिता ने कहा बेटा मदरसे जाओ दिल लगाकर पढ़ो और अपने उस्ताद की हर आज्ञा की पालना करना।

जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पर चलता है। उस पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

सिकन्दर लौट आया

विश्व के अनेक देशों को विजयी करता हुआ सिकन्दर भारत आया। यहाँ उसकी मुलाकात एक साधु से हुई। साधु नग्न था। सिकन्दर ने कहा—तुम्हारे पास तो कुछ भी नहीं। साधु ने उत्तर दिया—सारा जगत मेरा है। मैंने इसे बिना जीते ही लिया है। सिकन्दर ने पूछा—बिना जीते कोई जगत को कैसे जीत सकता है? उस साधु ने उत्तर दिया—मैंने इस जगत के मालिक को जीत लिया है और जब जगत का स्वामी मेरे साथ में है, फिर कौन चिन्ता करे छोटी-मोटी विजयों की। जब मालिक अपना है तो उसकी मिल्कियत भी अपनी है और मेरे जीने का ढंग तुमसे अलग

है। मेरा काम तलवार उठाना नहीं सिर झुकाना है।

सिकन्दर प्रसन्न हुआ। उसे ये बात अति प्रिय लगी। वह बोला—मैंने भी जगत जीता है। तो वह साधु बोला—ऐसा समझो कि एक मरूस्थल में खो जाओ, गहन प्यास लगे और मैं एक लोटा जल लेकर उपस्थित हो जाऊँ, तो एक लोटा जल का लिए, तुम अपने राज्य का कितना हिस्सा देने को तैयार हो जाओगे। अगर तुम प्यास से तड़प रहे हो मर रहे हो तो? सिकन्दर ने कहा—ऐसी स्थिति में मैं अपना आधा राज्य देने को तैयार हो जाऊँगा, प्राण थोड़े ही गवाऊँगा, मैं एक लौटा जल खरीद लूँगा। साधु ने कहा—पर मैं बेचूँगा तब ना आधे राज्य के बदले में क्यों बेचूँगा? कीमत और बढ़ाओ अधिक से अधिक कितना दे सकते हो? सिकन्दर ने कहा—अगर ऐसी ही जिद तुम्हारी हो और मुझे प्यास लगी हो, मैं मर रहा हूँ तो पूरा राज्य दे दूँगा। साधु ने कहा तो कितना तुम्हारे राज्य का मूल्य है। एक लोटा भर पानी और इसे कमाने में तुमने जीवन गँवाया। सिकन्दर पर साधु के विचार का प्रभाव पड़ा। कहते हैं कि उसके भारत से लौटने का एक कारण यह भी था।

नारायण परलोक में, ये दो आवत काम।
देना मुट्ठी अन्न की, लेना भगवत् नाम॥
दो बातन को भूल मत जो चाहे कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्री भगवान्॥

चीन का संत

चीन के एक संत का अंतिम समय आ पहुँचा। उन्होंने अपने सभी शिष्यों को अंतिम शिक्षा के लिए पास बुलाया और बोले, कोई गिनकर बताओ कि मेरे मुंह में कितने दांत हैं? सभी शिष्यों ने आश्चर्य से कहा—आपके दाँत तो कब के गिर चुके हैं। गुरु ने पूछा—"जीभ तो है ना।" शिष्य गण विस्मय से बोले, जीभ के बिना आप कैसे बोल पाते? जीभ तो है। कितना आश्चर्य है कि जीभ तो जन्म के समय भी थी और अब भी है। जब कि दाँत बाद में आए और पहले चले गए। जानते हो इसका कारण क्या है? नहीं, शिष्यों ने सिर हिलाकर कहा। संत गम्भीर मुद्रा में बोले, यह जीभ कठोर नहीं है, इसलिए अभी तक बनी हुई है। दाँत कठोर होने के कारण ही जल्दी टूट गए। कठोरता ही उनके टूटने का कारण बन गई। इसलिए मेरा अंतिम पाठ याद रखो कि विनम्रता जीवन में लम्बे समय तक साथ भी देती है और सदैव लाभकारी भी होती है।

संत कहते हैं—आलस्य छोड़कर प्रभु का भजन करो। हम मानव बने हैं दूसरों की भलाई करके अपना जीवन सफल कर ले। अभी जागकर प्रभु का स्मरण कर ले नहीं तो मौत आने पर एक न एक दिन सबको पैर पसारकर लम्बे समय तक सोना ही है।

मैं अपराधी जन्म का नखसिख भरा बिकार।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्भार॥

हम कहीं न कहीं, किसी न किसी अवगुण में फंसे हैं बस एक गुरु ही है जो हमें सर्व दुखों से व अवगुणों से बचा सकता है।

भगवान श्री कृष्ण की जीत

भगवान ने गीता में कहा है कि आत्मा का नाश करने वाले, नरक के तीन प्रकार के द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ। इसलिये विवेकी पुरुष को इनका त्याग कर देना चाहिये।

विषयों का चिंतन, काम माने कामनाओं को प्रकट करता है। कामनाऐं पूर्ण न होने से क्रोध प्रकट हो जाता है। यदि हम क्रोध करते रहें तो इसका बल बढ़ता जाता है और इसकी ओर ध्यान न दें तो यह निर्बल होकर समाप्त हो जाता है।

एक दिन बलराम, श्री कृष्ण और सात्यकि वन में कहीं भटक गए। रात हुई तो उन्होंने घोड़ों को बाँध दिया और एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने का निश्चय किया। तीनों ने एक-एक प्रहर जागकर पहरा देने का निर्णय किया। पहले प्रहर में सात्यकि पहरे पर थे, एक पिशाच प्रकट होकर बोला—मैं तुम्हें छोड़ दूँगा और इन दोनों सोने वालों को खा लूँगा। सात्यकि ने कहा—जान बचाना चाहते हो तो भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें मार दूँगा। पिशाच ने सात्यकि को चुनौती दी और दोनों में युद्ध छिड़ गया। पिशाच के पैतरें देख, सात्यकि को क्रोध आता और वह जितना गुस्सा होते, पिशाच का बल भी उतना बढ़ता जाता। अन्त में सात्यकि लहूलुहान हो गए। तभी प्रहर समाप्त हो गया। इतने में वह पिशाच भी गायब हो गया।

अब बलराम पहरा देने लगे। थोड़ी देर बाद फिर वह पिशाच प्रकट हुआ और बलराम से भी दोनों सोते हुए

लोगों को खाने की बात कही। बलराम और पिशाच में युद्ध छिड़ गया। समय के साथ पिशाच का आकार और बल बढ़ता जा रहा था और बलराम किसी तरह भी उससे जीत नहीं पा रहे थे। तभी प्रहर समाप्त हुआ और श्री कृष्ण पहरे के लिए जागे। पिशाच ने आकर उनसे भी वही बात कही। श्री कृष्ण ने मुस्करा कर कहा—तुम भले आए, अब मेरा समय कट जाएगा। पिशाच आकर उनसे भिड़ गया लेकिन श्री कृष्ण हंसते हुए उसके हर वार का जवाब देते और उनकी हर हंसी के साथ पिशाच का बल और आकार कम होता जाता। घटते-घटते जब वह किसी कीड़े के बराबर हो गया तो श्री कृष्ण ने उसे कपड़े में बाँध लिया। प्रातः सात्यकि और बलराम उठे तो श्री कृष्ण ने उनकी हालत का कारण पूछा। उन्होंने सारी घटना सुना दी। श्री कृष्ण ने कपड़ा खोलकर पिशाच को सामने रखकर कहा—आपने पहिचाना नहीं, यह पिशाच ''क्रोध'' है। यदि हम क्रोध करते रहे तो इसका बल बढ़ता जाता है और अगर हम इसकी ओर ध्यान न दें तो यह निर्बल होकर समाप्त हो जाता है।

क्रोध आग है, आग को प्रोत्साहन मत दो। आग जलाती है आग किसी का भी लिहाज नहीं करती, आग से दूर रहना चाहिये। लोभ को मत फैलने दो, उसका स्वभाव अपार है। जैसे समुद्र अपार है, उससे उलझो मत। उलझोगे या निकट जाओगे तो फँस जाओगे डूब जाओगे। अपने मन को काम में फँसाओगे तो प्रभु की ओर चल नहीं पाओगे क्योंकि काम कहता है रुको सुख ले लो। कामनाएं कहती हैं कि हमें पूरा करो। उनको पूरा करने के लिये

ठहरना पड़ेगा। ठहरोगे तो मंजिल कैसे पाओगे। बस एक वस्तु मिल सकती है। "या काम या राम"

"काम" संसार से बाँधता है। "राम" बाँधता नहीं स्वतंत्र करता है। ज्ञान से क्रोध शान्त हो जाता है। प्रभु प्रेम से संतोष प्रकट होता है। संतोष के सामने लोभ टिक नहीं पाता! आलसी और प्रमादी व्यक्ति को काम ज्यादा सताता है। जो व्यक्ति कर्मशील है वो काम को अपने वश में कर लेता है। ज्ञान के मार्ग में क्रोध, भक्ति के मार्ग में लोभ और कर्म के मार्ग में काम बाधक बनता है। जो गुरु की शरण में है। उसे कोई नहीं सता सकता। गुरु भक्त को चारों पदार्थ सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं। गुरु अपने प्यारे को सर्व-बन्धनों से मुक्त कर देते हैं।

महर्षि रमण का परमात्मा से साक्षात्कार

रमण महर्षि के बारे में कहा जाता था कि उन्हें परमात्मा का साक्षात्कार हो गया था। एक दिन दो धर्म प्रचारक उनके पास आए और पूछा कि क्या आपको प्रभु के दर्शन हो गए हैं? वे बोले हाँ। धर्म प्रचारकों ने कहा कि फिर हमें भी कराइए। महर्षि ने उन्हें लेकर एक टूटी-फूटी झोपड़ी में पहुँचे। वहाँ पानी का बर्तन खाली था। जमीन पर एक वृद्ध कोढ़ी सो रहा था। महर्षि दोनों को दरवाजे पर खड़ा रहने

का कहकर अन्दर आ गए थे। उन्होंने वहाँ सफाई की। फिर घड़े में पानी भरा। इसके बाद वृद्ध कोढ़ी के कान में प्रभु-नाम उच्चारण करके उसे जगाया। देखो! भोर हो गई है। सूरज कनक-थाल लेकर तुम्हारे द्वार आया है, महर्षि ने वृद्ध कोढ़ी से कहा। उसके चेहरे पर खुशी और शरीर में फुर्ती नहीं थी। महर्षि ने उसके घाव धोए। खुद औषधि लेपन किया उसे नित्यकर्म से फुरसत करवाकर कुछ प्रसाद दिया। फिर कोढ़ी से बोले—आओ ध्यान में बैठें। प्रभु का ध्यान करें। थोड़ी देर तक रमण महर्षि और उस वृद्ध कोढ़ी दोनों ने ध्यान किया। फिर महर्षि ने कोढ़ी से पूछा, क्या तुम्हें प्रभु के दर्शन हुए। वह बोला—हाँ। महर्षि ने पूछा—प्रभु कैसे थे? वह बोला बिल्कुल आप जैसे। अब कोढ़ी की बारी थी। उसने महर्षि से पूछा—क्या आपको प्रभु दर्शन हुए। महर्षि बोले हाँ। कोढ़ी ने पूछा, प्रभु कैसे थे? महर्षि ने उत्तर दिया—बिल्कुल तुम्हारे जैसे। जब ये दोनों एक दूसरे के भीतर विराजमान परमात्मा के दर्शन कर रहे थे तभी द्वार पर खड़े दोनों धर्म प्रचारक सारा दृश्य देख रहे थे और वार्तालाप सुन रहे थे। रमण महर्षि अब उनकी तरफ देखकर बोले—क्या तुम लोगों को भी प्रभु के दर्शन हुए। वे बोले हाँ महर्षि। प्रभु-दर्शन होने के साथ-साथ यह पता भी चल गया कि प्रभु का द्वार चढ़ना हो तो उसका रास्ता सेवा की सीढ़ी से होकर ही जाता है।

महात्मा और राजा

एक महात्मा थे, सिद्ध और विवेकशील। एक बार उन्हें पड़ा हुआ एक पैसा मिला। महात्मा ने उसे उठा लिया। वे सोचने लगे, भिक्षा में मुझे भोजन तो मिल जाता है। फिर क्यों मैंने यह पैसा उठा लिया? उन्होंने निश्चय किया कि इस पैसे को मैं सबसे गरीब आदमी को दान कर दूँगा।

समय गुजरता गया। महात्मा गरीब आदमी की तलाश में घूमते रहे। परन्तु कोई सुपात्र उन्हें नहीं मिला। महात्मा जी घूमते-घूमते उस राज्य की राजधानी में एक दिन पहुँचे। उन्होंने देखा कि राजमार्ग पर राजा के साथ अस्त्र-शस्त्रों से सजी विशाल सेना चली आ रही है। राजा भी महात्मा को पहिचानता था। हाथी से उतरकर उसने महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा ने कहा! राजन् अपना हाथ आगे करो और उन्होंने अपनी झोली से एक पैसा निकालकर राजा के दाहिने हाथ पर रख दिया। आश्चर्य चकित राजा ने महात्मा से पूछा—महाराज! यह क्या है? महात्मा ने उत्तर दिया—मैंने सोचा था इस पैसे को मैं सबसे गरीब आदमी को दूँगा। वह गरीब आदमी तुम हो। राजा ने विनीत स्वर में कहा, महाराज आपके आशीर्वाद से मेरे खजाने में हीरे-जवाहरात का भंडार है। महात्मा ने उत्तर दिया फिर भी राजन् तुम गरीब हो। यदि तुम्हारे खजाने में धन का अंबार है तो सेना लेकर कहाँ जा रहे हो? आक्रमण करने? युद्ध में कितने लोगों की जान जाएगी? यह सब किसलिए? मात्र राज्य विस्तार के लिए? तब तुझसे गरीब और कौन हो सकता है? राजा की नजरें शर्म से झुक गई। उसने महात्मा के चरण-

स्पर्श कर अपनी सेना को लौटने का आदेश दिया। राजा सेना के पीछे चलते हुए मुट्ठी में बंद सिक्के को बार-बार देख रहा था। वह मानो जंग में अनमोल खजाना जीतकर लौट रहा हो।

जब तू आया जगत में, लोग हंसे तू रोय।
ऐसी करनी ना करो, पीछे हंसे सब कोय॥

जब हम इस संसार में पैदा होते हैं। तब हमारे आने की खुशी में सारे लोग प्रसन्न होते हैं और बालक रोता है। हमें मानव-शरीर मिला है। यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु इससे भी अच्छी बात यह होगी कि हम कोई ऐसी श्रेष्ठ बात करें जिससे हमारे जाने के बाद सारा जमाना हमें याद करे। ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए कि हम पर लोग हंसे।

इस देह को बनाने वाला अंशी (परमात्मा) है। और इस देह में स्थित अंश (आत्मा) उस परमात्मा अंशी का है। दोनों एक-दूसरे से जुदा नहीं। गुरु अपने शिष्य को सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और विराट से भी विराट ज्ञान से परिचय कराता है। गुरु अपनी सारी शक्ति शिष्य में उड़ेल देना चाहता है। गुरु चाहता है कि मैं पहले शिष्य के मन का मार्जन करूँ। उसे उस दिव्य-ज्ञान के लिए पात्र बनाऊँ। कई शिष्य तो इस प्रक्रिया से डरकर भाग जाते हैं। लोग अक्सर जल्दी और सहजपने से ज्ञान को ग्रहण करना चाहते हैं। गुरु के सामने श्रद्धा और विश्वास को प्रस्तुत करें जिससे गुरु कृपा के पात्र बनकर कल्याण मार्ग पर चलने का अवसर मिल जाए।

जो जैसी करनी करता है। उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। सतगुरु की आज्ञा में सदा रहना चाहिए। जो

मनुष्य अपने गुरु को भक्ति भाव से पूजता है वो किसी भी समय किसी दुःख में नहीं फँसता। वो सदा आनंद में रहता है।

शिष्य का सार्थकपन इसी में है कि वह गुरु के सानिध्य में बैठकर आत्म-दर्शन कर ले। वह शिष्य धन्य है जो गुरु को पहिचान लेता है। कहा गया है कि हे प्यारे शिष्य अपने अहं को मिटाकर गुरु के हृदय में बस जाना या फिर गुरु को अपने हृदय में बसा लेना।

जब तक देह है तब तक संसार दिखाई पड़ता है। देह के शान्त होते ही वह भी विलीन हो जाता है। गुरु कहते हैं कि तू देह नहीं आत्मा है। तू देह से परे है। तू शुध्द है, तू बुध्द है, तू नित्य है, तू शाश्वत् है, तू अजर-अमर है। तू प्रकाशं को भी सत्ता देने वाला है। ऐसा अद्वितीय-ज्ञान तेरे अज्ञान के आवरण से ढंका हुआ है। अज्ञान का यह आवरण जैसे ही मन पर से हट जाएगा वैसे ही सर्व में प्रभु नजर आने लगेगा।

गुरु को बार-बार प्रणाम करो। मन साफ होता चला जाएगा। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पिता और पुत्र से भी श्रेष्ठ है। शिष्य को सबसे पहले गुरु में प्रभु को देखना होगा। फिर धीरे-धीरे सबमें दर्शन होने लगेंगे।

शिष्य को एक जन्म तो माँ से मिलता है और दूसरा जन्म उसको गुरु से मिलता है। गुरु के दिए हुए जन्म से मरण सुधर जाता है।

हमारे जीवन में दो तिथियों का बड़ा महत्त्व है। एक तिथि जन्म की और एक तिथि मरण की। इन दोनों में ही अद्भुत जीवन छिपा हुआ है। जन्म भी जीवन है और मरण

के बाद भी जीवन है। मन चाहता है कि जीवन और मरण के बीच की यात्रा को बिना किसी रूकावट के चालू रखूँ। जो भी वासनाऐं है बस उनको पूरा करने में लग जाऊँ।

जीवन और मृत्यु के बीच में एक बहुत बड़ी परेशानी आ जाती है। वह है वासना के विस्तार का। जीवन तो समाप्त हो जाता है किन्तु वासना का अन्त नहीं हो पाता। उसका अन्त गुरु के पास है। अहं हमें गुरु के पास जाने नहीं देता है। जिसको अपना कल्याण करना होवे वह अपने सिर को झुकाकर गुरु के चरणों में जाकर अपना कल्याण करें।

हम गुरु बनाने पर ध्यान न दें बल्कि अच्छा शिष्य बनाने का प्रयास करें। गुरु के गुणों का मापदण्ड न करें। गुरु तो सबसे श्रेष्ठ हैं—महान् हैं—पूर्ण हैं। हमें गुणवान बनकर जीवन में खरा उतरना है।

जीवन केवल खाने-पीने और सोने के लिए नहीं मिला है। बल्कि जीवन पाकर उसे उच्च शिखर तक पहुँचाना है। प्रत्येक गुरु चाहता है कि मेरा शिष्य शिखर तक पहुँचें। शिष्य गुरु को पाकर पूर्ण होता है। प्रत्येक के जीवन में गुरु का होना अति आवश्यक है। जैसे बिना प्रकाश के कार्य सम्भव नहीं वैसे ही गुरु के बिना आनन्द और शान्ति नहीं मिल सकते। शिष्य का धर्म है कि वह अपने गुरु का आदरपूर्वक उपदेश सुनकर उसका निःसंकोच पालन करे। शिष्य का मार्गदर्शक गुरु है। उनकी आज्ञा ही उसके लिए सर्वोपरि है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह केवल मौन रहकर उनकी वाणी सुनता रहे। उपदेश सुनने के साथ-साथ उसे अपनी जिज्ञासा को शान्त करने का भी अधिकार है।

बुद्धिहीन मनुष्य का जीवन बेकार है। वो माया और मोह के चक्कर में पड़कर अपने मन मदारी के सामने बन्दर बनकर नाचता फिरता है। सच्चा साधु वो है जो प्रभु और गुरु का नाम सदा जपता रहता है। जो अपने बड़ों का मान करता है। प्रभु उसके मान-सम्मान का ध्यान रखते हैं।

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वो संसार में आकर अपने मन के सारे-संशय मिटाकर उसे निर्मल कर ले। मन का निर्मल होना सबसे श्रेष्ठ बात है। क्योंकि निर्मल-मन में ही ज्ञान, भक्ति और शान्ति का निवास है।

जीवन का लक्ष्य है उसे सुचारू रूप से चलाना। जीवन में कर्म, धर्म और आध्यात्म का होना बहुत जरूरी है। इन तीनों के बिना जीवन में सुगन्ध नहीं आ सकती।

देह है नाव के समान। नाव पानी में अच्छी लगती है किन्तु नाव में पानी अच्छा नहीं लगता। शरीर मिला है कि शरीर में स्थित शरीरी (आत्मा) को जानो। जिसने जान लिया वही विजयी है। शरीर को संसार में रहना है यह बात ठीक है। किन्तु मन संसार का चिंतन करे यह बात ठीक नहीं। गुरु अपने ज्ञान से संसार का विस्मरण कराता है। किन्तु हमारी प्रीत तो संसार से ही लगी है। आए तो इसलिए थे कि संसार से प्रीत छोड़कर प्रभु से प्रीत लगानी है। किन्तु फँस गए उलझनों में।

परेशानियों को मिटाने वाला बस एक गुरु ही है। गुरु के आगे अपने मन को खोलना होगा। शत्रु को छिपाओ मत उजागर करो। अवगुणों को मत छिपाना अन्यथा बहुत सी दिक्कते पैदा हो जाएगी।

अवगुण, मुर्दे के समान है। मरी हुई मछली को

छिपाओगे तो दुर्गन्ध फैलेगी। किसी एक महापुरुष को अपना बना लो, उससे कुछ भी मत छिपाना उसको अपने शरीर का अंग समझना।

मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार।
दास कबीरा क्यों बंधे, जाके नाम अधार॥

संसार के लोग "यह मेरा है-यह तेरा है" के प्रपंचों से बंधे हुए हैं। संतजी कहते हैं कि जो गुरु के सच्चे सेवक हैं वे इन बंधनों से मुक्त रहते हैं। क्योंकि उनको अपने गुरु का सहारा मिला हुआ है।

एक घर तो इस संसार में शरीर के रूप में है और दूसरा घर परम धाम है। वास्तव में हमारा वही घर असली है। हम सब संसार के बाजार में घूमने आए हैं। हम सबको अच्छे-अच्छे कर्म करने चाहिए। क्योंकि वापस जाने के बाद शर्मिन्दी न उठानी पड़े।

हम सब ईश्वर की संतान हैं। सफल होने के लिए अच्छे पिता की अच्छी संतान बनना पड़ेगा। अच्छे-कपड़े पहिनकर, भोगों में डूबकर जब व्यक्ति अच्छा धन कमा लेता है तब वह अहंकार में खो जाता है। ऐसा मनुष्य अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझता।

जो परमात्मा को प्रसन्न करना चाहता है। जो सकुशल अपने परम धाम को जाना चाहता है वो पुरुष वो भक्त वो सेवक गुरु की शरण का सहारा ले-ले। गुरु सर्व समर्थ हैं। वे अवगुणी वो गुणवान, अज्ञानी को ज्ञानी और भूले हुए को वो सही राह बतलाकर कल्याण करते हैं। गुरु महाराज परम्-दयालु और सबका हित करने वाले होते हैं। उनकी नजर में गरीब-अमीर एक समान होते हैं। हमें आलस छोड़कर

उनकी शरण में जाना चाहिये। वे सबके दाता हैं सबको देते हैं। जो मनुष्य छल-कपट छोड़कर उनकी आज्ञा में चलता है उसका बेड़ा पार होता है।

सीताजी का हनुमान को आशीर्वाद

धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवाँ।
बन अशोक सीता रह जहँवाँ॥

हनुमानजी चलते-चलते अशोक-वाटिका में जा पहुँचे। वहाँ पर सीताजी को देखकर मन ही मन प्रणाम किया। सीताजी का शरीर दुर्बल हो गया था। सिर पर जटाओं का जुड़ा और हृदय में श्रीरामजी का जप कर रही थी। वे शान्त भाव से बड़ी उदास व दुःख में डूबी हुई, अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी। जानकी जी को दीन देखकर हनुमान जी को बहुत दुःख हुआ।

हनुमान जी पेड़ पर जाकर बैठ गए। वे रात्री का इन्तजार करने लगे। रात होने पर हनुमान जी विचार करने लगे कि मैं ब्राह्मण का रूप लेकर प्रकट हो जाऊँ? या मूल रूप? या रामजी ने मुद्रिका दी है वह मुद्रिका फेंकू? या प्रकट होकर मुद्रिका चरणों में रख दूँ? क्या करूँ?

हनुमानजी वृक्ष के पत्तों में छिपकर बैठे हुए थे। अभी वे विचार कर ही रहे थे कि क्या करूँ या क्या न करूँ? उसी समय रावण, मन्दोदरी के साथ बड़े ठाठबाट से अशोक-वाटिका में आ पहुँचा। उसने आते ही सीताजी को बहुत भाँति से समझाकर साम, दाम, दंड और भय दिखाया।

फिर उसने कहा, हे सुमुखी—हे सयानी! तुम एक बार मेरी ओर देख लो। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी रानियों को तुम्हारी दासी बना दूँगा।

रामजी का स्मरण करके एक तिनके को आड़ में रखकर सीताजी ने कहा, हे रावण तू मेरी बात ध्यान से सुन। कमल का विकास सूर्य से है और पतंगें का प्रकाश से। जुगनू के प्रकाश से कमल नहीं खिल सकता। रामजी, सूर्य हैं और मेरा मन कमल है। तू तो जुगनू के समान है। जब सीताजी ने रावण को जुगनू के समान कहा तब उसे बहुत गुस्सा आ गया और सीताजी को तलवार निकालकर मारने के लिये दौड़ा। रावण ने कहा तूने मेरा अपमान किया है, अभी तेरा सिर काट देता हूँ।

रावण सीताजी को मारने दौड़ा तो जिस डाली पर हनुमान जी बैठे थे वह डाली काँपने लगी। हनुमानजी ने सोचा कि थोड़ा आगे आये तो गला पकड़ लूँ। मेरी माँ पर प्रहार करेगा तो उसे छोड़ूँगा नहीं।

सीताजी तलवार से प्रार्थना करती हैं कि हे बहिन तू भी नारी जाति की, मैं भी नारी जाति हूँ। आज मुझ पर दुःख है। हे बहिन, दया कर मेरी गर्दन पर गिर जिससे मेरी मृत्यु हो जाय और मैं इस त्रास से छुटकारा पा जाऊँ।

रावण तलवार लेकर ज्यों ही सीताजी की ओर दौड़ा कि मन्दोदरी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने कहा, पतिदेव, अबला पर प्रहार नहीं किया जाता, तलवार म्यान में रखिये। और रावण ने तलवार म्यान में रख दी।

मास दिवस महुँ कहा न माना।
तो मैं मारिब काढि कृपाना॥

रावण ने जाते-जाते कहा, यदि तुम मेरा कहना, एक महीने में नहीं मानोगी तो मैं तुम्हें इसी तलवार से मार डालूँगा। राक्षसियों को बुलाकर रावण ने हुक्म दिया कि सीता को सताती रहा करो। वे सीताजी को सताने लगी।

उसमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। वो ज्ञान में चतुर और श्रीरामजी के चरणों से प्रेम करती थी। उसने सब राक्षसियों को बुलाकर समझाया कि तुम सब सीता को सताना छोड़ दो। अन्यथा तुम्हें बहुत पछताना पड़ेगा। उसने कहा कि मेरा स्वप्न कभी झूठा नहीं होता। बहिनों, मैंने एक सपना देखा है। उसमें एक बन्दर लंका में आया है और उसने लंका जला दी है। राक्षसों का खात्मा किया और रावण पराजित होकर दक्षिण की ओर चला गया। लंका का राज्य विभीषण को मिला है। त्रिजटा ने कहा, मुझे ऐसा लग रहा है कि थोड़े ही दिनों में मेरा सपना सच होगा। इसलिये हे बहिनों, सीताजी को कष्ट मत दो। राक्षसियाँ डर गयी और सीताजी को प्रणाम करके चली गयी।

हनुमानजी ऊपर बैठे-बैठे सोच रहे थे कि मैं आया हूँ और इसने सपना देखा है। अब भगवान् करे, जल्दी से जल्दी इसका सपना सच हो जाये।

सीताजी ने त्रिजटा से कहा, "आप मुझे अग्नि ला दीजिये, मुझे जल मरना है।" त्रिजटा ने कहा, हे राजकुमारी यह लंका है यहाँ रात में अग्नि नहीं मिलती। हनुमानजी जब यह वार्तालाप सुना तो उन्हें लगा कि लंका में अग्नि की तकलीफ है, मैं कल घर-घर अग्नि की व्यवस्था कर दूँगा।

त्रिजटा, सीताजी को समझाकर चली गयी। सीताजी

से रामजी का विरह सहन नहीं हो रहा। आकाश के सितारों से कहती हैं, "तुम नीचे आकर मुझे जला जाओ।" हे अशोक वन मेरी विनय सुनो। मेरा शोक दूर करो और अपने अशोक नाम को सत्य करो।

हनुमानजी ने श्रीरामजी का ध्यान हृदय में करते हुए और मुख से राम का नाम लेते हुए, सीताजी के पास ऊपर से मुद्रिका फेंकी। सीताजी ने सोचा, अशोक ने अँगारा दे दिया। उस मुद्रिका को अँगारा समझकर सीताजी ने प्रसन्न होकर उठा लिया।

सीताजी ने देखा कि मुद्रिका पर रामनाम लिखा है। उन्हें लगा कि क्या कोई रामजी को जीतकर यह मुद्रिका ले आया है? किन्तु रामजी तो अजेय हैं। और ऐसी मुद्रिका माया से नहीं बनाई जा सकती फिर इस मुद्रिका को यहाँ पर कौन लाया है।

रामचन्द्र गुन बरनै लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागी सुनै श्रवन मन लाई।
आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

हनुमानजी, श्रीरामजी के गुणों के गान करने लगें। *"राम-राम-राम जै श्रीराम-जै श्रीराम।"* रामजी का नाम सुनते ही सीताजी के दुःख दूर हो गये। वह मन और कान लगाकर सुनने लगी, तब हनुमान जी ने शुरू से सार कथा कह सुनाई। सीताजी से रहा नहीं गया। इतनी सुन्दर कथा सुनाने वाले हे भाई! तुम कौन हो? सामने क्यों नहीं आते?

हनुमानजी जै श्रीराम कहते हुए सीताजी के सामने प्रकट हुए। सीताजी ने भय और आश्चर्य से मुँह फेर लिया।

उन्हें लगा कि कोई राक्षस बन्दर का रूप लेकर आया है।

रामदूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करूणा निधान की॥

हनुमानजी ने कहा, हे माता सीताजी मैं करूणामय की सच्ची शपत खाकर कहता हूँ कि मैं श्रीरामजी का दूत हूँ। और यह मुद्रिका मैं ही लायः हूँ। रामजी ने इसे पहिचान के रूप में दी थी। इस पर सीताजी ने पूछा कि मनुष्य और बन्दरों का संग कैसे हुआ? तब हनुमानजी ने पूरी कथा कह सुनाई। "करूणानिधान" सुनकर सीताजी को विश्वास हो गया कि हनुमानजी, मन, वचन, कर्म से कृपा-सिन्धु श्रीरामजी के सेवक हैं। उन्हें विश्वास इसलिए हो गया कि सीताजी ने ही श्रीरामजी का "करूणानिधान" नाम रखा था। सीताजी का यह निजी सम्बोधन था। निजी-नाम को जानने वाला भी कोई निजी ही होगा।

सीताजी ने कहा, हे हनुमान, तुम मेरे वियोग रूपी समुद्र में नाव बनकर आये हो। मेरे प्रभु जो सुख के धाम हैं, वे कुशल तो हैं? वे बड़े कोमल व दयालु हैं, फिर किस कारण वे इतने निष्ठुर हो गये हैं? सेवक को सुख देना उनका स्वभाव है, क्या नाथ ने मुझको बिल्कुल भुला दिया है? सीताजी को विरह में दुःखी देखकर हनुमान जी ने सुन्दर और विनय युक्त वचनों से कहा, हे माता कृपा निधान प्रभु, लक्ष्मण जी सहित कुशल हैं। परन्तु वे आपके वियोग में बड़े दुःखी हैं। हे माता मन को छोटा न करिये, उनके हृदय में आपसे दूना प्रेम है। हनुमान जी ने आँखों में जलभर कर कहा, हे माता अब आप रघुनाथ जी का सन्देश धैर्यपूर्वक सुनिये। हे माता, प्रभु श्रीराम, आपके वियोग में

बहुत दुःखी हैं। उन्होंने आपके लिए यह सन्देश दिया है— हे सीते! तेरे वियोग में मैं जिस वृक्ष के नीचे बैठता हूँ, वह वृक्ष मुझे पीड़ा देता है। तेरे वियोग में शीतल पवन भी मुझे अग्नि के समान लगता है। हे सीता, तेरे वियोग में आकाश में से बरसती बरसात मानो गर्म किया तेल कोई मुझ पर बरसाता हो, ऐसा अनुभव मुझे होता है। मैं तेरे वियोग में बहुत दुःखी हूँ। माँ रामजी ने ऐसा कहला भेजा है।

हनुमानजी ने जब विरह की बात कही तब सीताजी ने सुन्दर प्रश्न किया, यदि रामजी मुझे इस तरह याद करते हैं तो मुझे लेने क्यों नहीं आते? उनके हाथ में धनुष-बाण है यह कैसे भूल गये? जयंत को ब्रह्मलोक तक दंड देने वाले क्षत्रिय हैं, यह कैसे भूल गये?

हनुमानजी उत्तम सन्देश वाहक हैं। उन्होंने क्या तो सुन्दर जवाब दिया। उन्होंने कहा, माँ, रामजी आपकी याद में इतना डूब गये हैं कि अपने हाथ में धनुष-बाण है या नहीं, वही वे भूल गये हैं। स्वंय वे क्षत्रिय हैं या नहीं इस बात को भी वे भूल गये हैं।

यह बात सुनकर सीताजी चुप हो गई। हनुमानजी ने सीताजी को रामजी का सन्देश कह सुनाया। सीताजी को रामजी का सन्देश सुनकर संतोष हुआ। रामजी और लक्ष्मण जी की याद करके सीताजी की आँखों में आँसू आ गए। हनुमानजी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, माँ, मैं इसी वक्त लंका का नाश कर सकता हूँ, रावण को समुद्र में फेंक सकता हूँ और आपको यहाँ से मुक्त कराकर रामजी के पास ले जा सकता हूँ किन्तु मुझे श्रीरामजी की आज्ञा नहीं है।

हनुमानजी की बातों को सुनकर सीताजी को एक क्षण के लिए शंका हुई कि यह जरा ज्यादा बोलने वाला लगता है। उन्होंने हनुमानजी से कहा, हनुमान तू यहाँ आया यह अच्छा हुआ। तू सभी को मार डालने की बात करता है, परन्तु यहाँ पर तो सभी भयानक राक्षस बैठे हुए हैं। हे हनुमान, स्वामी रामजी ने जो भालू-बन्दर एकत्र किये हैं वे सब तेरे जितने हैं कि तुझसे बड़े हैं?

हनुमानजी को लगा कि माँ को पता नहीं कि मैं कौन हूँ। वे केवल मेरा बाहरी रूप देख रही हैं। हनुमानजी ने सीताजी को विश्वास दिलाने के लिये श्रीरामजी का स्मरण करके अपने पैर के अंगूठे को पृथ्वी पर दबाया। बस ऐसा करते ही वे ''सुवर्ण का सुमेर पर्वत मानो खड़ा हो गया हो।'' इतना विशाल रूप उन्होंने धारण कर लिया।

हनुमानजी का ऐसा विराट रूप देखकर सीताजी ने आँखें बन्द कर ली। सीताजी ने हनुमानजी से कहा, मैं जैसा चाहती थी तू वैसा ही है। अब तुम जैसे पहले थे वैसे ही बन जाओ। हनुमानजी जैसे थे वैसे ही हो गये। हनुमानजी से सीताजी बहुत प्रसन्न हुई।

सीताजी भक्ति की प्रतीक हैं। भक्ति को प्रसन्न करने के लिये श्रद्धा, विश्वास, सत्य और प्रेम की जरूरत पड़ती है। इन सबका दर्शन हनुमानजी में प्रत्यक्ष होता है। सीताजी ने हनुमानजी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

अजर अमर गुण निधि सुत होहु।
करहु बहुत रघुनायक छोहु॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

सीताजी ने हनुमानजी को पहला आशीर्वाद दिया तू "अजर" होगा अर्थात् तुझे कभी बुढ़ापा नहीं आयेगा। "अजर" होने का अर्थ यह है कि "उसे कभी बुढ़ापा नहीं आता।" "अजर" होने का आशीर्वाद सुनकर हनुमानजी एकदम चुप हो गये। उन्हें कोई खुशी नहीं हुई।

सीताजी को लगा कि इसे अजर होने का आशीर्वाद कम लगा है। फिर दूसरा आशीर्वाद दिया कि तू "अमर" होगा। इसका अर्थ यह है कि तू सदा चिरंजीवी होगा। तेरी कभी मृत्यु नहीं होगी। हनुमानजी ने सोचा कि प्रभु के बिना "अमरता" किस काम की? हनुमानजी इससे भी कुछ प्रभावित नहीं हुए। सीताजी समझ गई कि इसे अजर और अमर होने में कोई रूचि नहीं है। उन्होंने उसे तीसरा आशीर्वाद दिया। "तू गुण निधि-गुणों का भंडार होगा।" हनुमानजी ने विचार किया कि गुणों के कारण अहंकार आ सकता है। और गुण व बल घटते-बढ़ते रहते हैं। इन पर भरोसा करना ठीक नहीं क्योंकि इनमें सच्चा-आनन्द नहीं होता इसलिये वे चुप ही बने रहे। सीताजी ने हनुमानजी की मन की बात जान ली। फिर उन्होंने कहा। जा तुझे मेरा आशीर्वाद है—"श्रीरामजी तुझसे बहुत प्रेम करेंगे।" ये शब्द सुनते ही हनुमानजी गद्‌गद् हो गये। उनका रोम-रोम खिल उठा। नेत्रों में आनन्द के आँसू छलक आये। वे प्रसन्नता से भर गये। हनुमानजी ने सोचा कि संसार में माया का बड़ा प्रभाव है, अगर मैं किसी क्षण प्रभु का स्मरण भूल गया तो अब तो मेरी सारी चिन्ता जाती रही। अब तो मेरी चिन्ता स्वयं रामजी करेंगे। मैं सबसे ज्यादा भाग्यशाली हूँ। क्योंकि माता का वचन है कि पिता परमेश्वर प्रभु रामजी

मुझसे प्रेम करेंगे। हे विधाता! आज मैं धन्य हो गया। संसार की सर्वश्रेष्ठ निधि को मैंने पा लिया है।

हनुमानजी ने सीता माता के पाँव पकड़कर कहा—हे माता! आपका आशीर्वाद अमोघ है। आपने मेरा जीवन धन्य कर दिया। आपके आशीर्वाद से मुझे हमेशा प्रभु श्रीरामजी का स्नेह मिलता रहेगा। हे माँ तू धन्य है, हे माँ तू धन्य है। सीता-माता की जय—सीता माता की जय।

रघुपति राघव राजाराम।
पतित पावन सीताराम॥

विवेकानंद ने कहा था

मेरा विचार है कि भारत में ऐसे शिक्षालय स्थापित किए जाएं, जहाँ हमारे नवयुवक ज्ञान से ओतप्रोत होकर देश तथा देश से बाहर प्राप्त ज्ञान को आगे फैला सकें। इसके लिए आवश्यकता है तेजस्वी, श्रद्धासंपन्न तथा दृढ़विश्वासी व निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ युवा भी मिल जाएं तो वे सम्पूर्ण-समाज का कायाकल्प कर सकते हैं।

इच्छाशक्ति संसार में सबसे बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह साक्षात् ईश्वर से प्राप्त होती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्व शक्तिमान है। सैकड़ों वर्षों से हीनावस्था का पाठ पढ़ते-पढ़ते युवाशक्ति का विश्वास समाप्त हो गया है, अतएव आवश्यकता है कि उन्हें अपने आपमें विश्वास पैदा करने का अवसर मिले। इस विश्वास के आधार पर ही उसके

भीतर का ईश्वर भाव जाग उठता है, तभी वह अपनी इच्छा के अनुरूप कुछ भी करने में समर्थ होता है।

आज हमें आवश्यकता है उन युवकों की, जिनका शरीर मजबूत और मन शुद्ध हो। जो पछताना और रोना छोड़कर अपने पैरों पर खड़े हों। हमें ऐसी सर्वांग-संपन्न शिक्षा की जरूरत है, जो हमें सच्चा-मनुष्य और युवा-सोच दे सकें। सत्य की इस कसौटी को समझना होगा। यानी जो भी हमें शरीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाए, उसे जहर की भाँति त्याग देना चाहिए। जिसमें जीवन शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, पवित्र है और ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो मन के अंधकार को दूर कर दे और जो हृदय में स्फूर्ति भर दे।

मैं अपने देश और युवाशक्ति से प्रेम करता हूँ। उन्हें नीचे गिरता हुआ नहीं देख सकता इसलिए चिल्लाकर कहने को बाध्य हूँ कि बस ठहरो अवनति की ओर और आगे न बढ़ो। जहाँ तक गए हो, बस उतना ही काफी हो चुका। अब कमजोर बनाने वाली चीजों को त्यागकर ज्ञान के उस बल को प्राप्त करो, जिसके बल पर दूसरे लोग तुम पर राज करते रहे हैं।

यह मत भूलो कि बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहली बात है हृदय की अनुभव शक्ति। यह हृदय की प्रेरणा स्त्रोत है। अतएव, ऐ मेरे देश के भावी कर्णधारो! तुम अनुभव करना सीखो कि क्यों अज्ञान के अंधकार ने पूरे भारत को ढँक लिया है, जिसका असर लोगों के जीवन पर दिखाई दे रहा है। यदि तुमने इन

लोगों के दुःखों को कम करने की दिशा में दो सांत्वनादायक शब्दों को भी खोज लिया है तो यही दूसरी बात है। तीसरी बात यह है कि क्या तुममें अपने पथ से कभी भी विचलित न होने की दृढ़ता है? यदि हाँ, तो यही वह तीसरी बात है। जो किसी भी आयु के व्यक्ति को युवा कहलाने का गौरव देती है। यदि तुममें ये तीनों गुण हैं तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य करने की क्षमता रखता है। फिर चाहे तुम पर्वत की कंदरा में ही क्यों न रहो, तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आएंगें और सैकड़ों वर्ष तक सारे संसार में प्रति ध्वनित होते रहेंगे।

भगवान् बुद्ध का उपदेश

एक छोटी सी नदी थी। उसके दोनों किनारों पर लोग रहते थे। नदी के पानी से दोनों ओर के लोग अपना-अपना काम चलाते थे। और सुखमय जीवन बिताते थे। एक बार संयोग से पानी को लेकर पक्षों में तानातानी हो गई। वे एक दूसरे पर आरोप लगा रहे थे कि तुम ज्यादा पानी ले रहो हो। जब आपसी बातचीत में मामला नहीं निपटा, तो वे मरने मारने पर उतारू हो गये। उनके पास जो भी हथियार थे, उन्हें तत्काल निकाल लाये और एक दूसरे पर टूट पड़ने को आमादा हो गये। तभी किसी ने जाकर भगवान बुद्ध को सुचना दी। उन्होंने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को बुलाया और तकरार का कारण पूछा। दोनों प्रतिनिधियों ने अपना-अपना पक्ष रखा। बुद्ध ने दोनों की बातें सुनी और मुस्कराकर

कहा—तो तुम लोग क्या करोगे? दोनों प्रतिनिधियों ने आवेश में आकर कहा, हम खून की नदियाँ बहा देंगे।

भगवान बुद्ध ने कहा, तो तुम्हें खून चाहिए। उन लोगों ने हतप्रभ होकर उनकी ओर देखा। फिर बोले, नहीं हमें पानी चाहिए।

तब सहज भाव से बुद्ध ने कहा कि खून-बहाकर खून मिलेगा, पानी कैसे पाओगे? कुछ ठहरकर आगे बुद्ध बोले—याद रखो, हिंसा-हिंसा को बढ़ाती है, बैर-बैर को बढ़ाता है। नदी से ही सीख लो कि वह किसी से लड़ती नहीं। वह निश्छल भाव से अपने जल का सभी के लिए दान करती है। बुद्ध के शब्दों ने जादू जैसा काम किया। और दोनों पक्षों की समस्या का सहज रूप से समाधान हो गया। दोनों पक्ष मिल बाँटकर पानी का उपयोग करने लगे।

गौतम बुद्ध का उपदेश

एक बार प्रदेश में अकाल पड़ा। यह देखकर गौतम बुद्ध को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने लोगों से कहा कि बहुत से लोग अन्न और वस्त्र के लिए तरस रहे हैं। उनकी सहायता करना हर मनुष्य का धर्म है। आप लोगों से जो कुछ बने वह दान करें। बुद्ध का उपदेश सुनकर सब लोग बिना दिए, अपने-अपने घर चले गए। एक गरीब व्यक्ति बैठा ही रहा। उसने सोचा कि मेरे पास तो यही वस्त्र हैं। अगर मैं इन्हें उतारकर दे दूँगा तो नंगा हो जाऊँगा। उसने फिर सोचा कि मनुष्य बिना वस्त्र के पैदा होता है और बिना वस्त्र के ही

चला जाता है। न जाने कितने साधु-संन्यासी बिना वस्त्र के रहते हैं। फिर मैं बिना वस्त्र के क्यों नहीं रह सकता? उसने अपने वस्त्र उतारकर बुद्ध को दे दिए। भगवान बुद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। वह प्रसन्न होकर घर की ओर चल पड़ा। वह खुशी से चिल्लाकर कह रहा था कि "मैंने अपने आधे मन को जीत लिया है।" तभी सामने से राजा की सवारी आ रही थी। उस गरीब की बात सुनकर राजा ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि तुमने आधे मन को कैसे जीता है? उस गरीब ने कहा कि भगवान बुद्ध दुखियों के लिए दान माँग रहे थे। यह सुनकर मैंने अपने वस्त्र उतारकर दे दिए। पहले तो मेरे मन ने इन्कार किया। फिर मैंने उसे समझाया कि मनुष्य बिना वस्त्र के पैदा होता है और मृत्यु होने पर साथ में कुछ भी नहीं जाता। राजा उसकी बात से बड़ा प्रसन्न हुआ उसने मोतियों का हार और कीमती वस्त्र उसे दिए। उसने वो सब ले जाकर भगवान बुद्ध के चरणों में रख दिए। बुद्ध ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—जो दूसरों के लिए अपना सब कुछ दे देता है उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

दाता दाता चले गए, रह गए अब कन्जूस।
दान मान समझे नहीं, लड़ने को मजबूत॥

गुरु और शिष्य

गुरु महाराज से शिष्य ने पूछा मेरा मन प्रभु स्मरण में नहीं लग रहा, कोई उपाय बताने का कष्ट करें? गुरु ने कहा, भगवान की महिमा को सुनो या पढ़ो। जितना उनके

गुणों और लीलाओं को सुनोगे उतना-उतना तुम्हारा मन वश में होने लगेगा। ऐसा करने से तुम्हें भगवान का महत्त्व समझ में आएगा। महत्त्व के प्रकट होने से भीतरी प्रेम से भी मिलन होने लगेगा। बस प्रेम के आते ही प्रभु का स्मरण अपने आप होने लगेगा।

गुरु महाराज ने कहा—हे प्यारे, भूखे को अन्न, प्यासे को पानी और दुःखी व्यक्ति की सेवा करना। इस काम को तुम प्रभु का भजन ही समझना। जो मनुष्य निस्वार्थ सेवा करता रहता है उससे प्रभु सदा प्रेम करते हैं। सेवा भी भजन से कम नहीं। ऐसे प्रेमी के पास भगवान बिना बुलाए चले आते हैं।

जो मनुष्य सत्संग और सेवा से जुड़ा है उसके मन में पाप प्रवेश नहीं कर पाता। सत्संग और सेवा की महिमा बड़ी अद्‌भुत है। उसकी शक्ति से पूर्व में किए हुए पाप भी जलकर भस्म हो जाते हैं।

गुरु महाराज ने कहा—परोपकार में लगना बहुत अच्छी बात है। जैसे-जैसे हमसे सेवा होगी वैसे-वैसे हमारा अहंकार नष्ट होगा। अहंकार भक्त और भगवान के बीच का परदा है। अहंकार के मिटते ही जीव और शिव का मिलन सहज हो जाता है। जो संसार को अपना नहीं मानता उनका अहंकार जल्दी मिट जाता है।

आकर जगत में अहंकार त्याग देना ही मोक्ष है।
जो त्याग देता है अहंकार वो नर पाता मोक्ष है॥
यदि मोक्ष चाहता है तो अहंकार तज दूर से।
छुट जाएगा जग जेल से मिल जाएगा भरपूर से॥

धर्म किसे कहते हैं?

मनु स्मृति में, निम्न दस अंग धर्म के कहे गये हैं।

1. सत्य 2. अहिंसा 3. क्षमा 4. दान 5. धैर्य 6. संतोष 7. चोरी न करना 8. क्रोध न करना 9. निंदा न करना 10. शरीर और मन को पवित्र रखना।

धर्म पर चलने का अर्थ है, धर्म की रक्षा करना, जो धर्म पर चलता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। "धर्मो रक्षति रक्षितः"

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अध माई॥

सबकी भलाई करना, धर्म है और दूसरों को कष्ट देना अधर्म है। जो धर्म पर चलता है वह इस लोक में यश और परलोक में अमरता पाता है।

मात् देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।

अपने माता-पिता का आदर करना। इनमें भी उन माता का पहले और पिता का बाद में, जिनसे हमको अपने शरीर की प्राप्ति हुई हैं। उनके बाद आचार्य अथवा गुरु की पूजा करनी चाहिये।

परदेश में मनुष्य के लिये विद्या ही मित्र है, घर में आज्ञाकारिणी स्त्री मित्र है। रोग होने पर औषधि मित्र है और मरने वाले के लिये एक मात्र धर्म ही मित्र है।

चार वेद छः शास्त्र में बात मिली है दोय।
दुख दीन्हें दुख होत है सुख दीन्हें सुख होय॥

डॉ. भरतलाल शर्मा द्वारा लिखित ज्ञान, धर्म, सत्य और ईश्वर की ओर ले जाने वाली अन्य धार्मिक पुस्तकें—

आप प्रवचन निःशुल्क करते हैं।

1. मन पर अंकुश कैसे लगे?
2. माया का चिन्तन कैसे मिटे?
3. कण-कण में भगवान!
4. राजा निर्मोह की कथा
5. ज्ञान से मुक्ति
6. सुख की ओर
7. मुक्ति-मार्ग
8. आनन्द-गंगा
9. ज्ञान-ज्योति
10. ज्ञान के मोती
11. ज्ञान और शान्ति
12. गायत्री माता
13. भगवान से प्रेम
14. ज्ञान गंगा
15. दृष्टांत दर्पण
16. भगवान से प्रीत
17. Love for God
18. Gyan-Ganga
19. Peace and God
20. दृष्टान्त दर्पण (तीनों भाग)
21. ज्ञान के हीरे
22. भगवान का मार्ग
23. ज्ञान अमृत
24. भक्त और भगवान
25. आनन्द-धारा
26. भक्ति में शक्ति
27. दर्शन दो भगवान
28. प्रभु-कृपा
29. सत्संग की महिमा
30. तेरा सांई तुझमें
31. रामजी की कृपा
32. मन की शुद्धि के उपाय

घर का पता :
डॉ. भरतलाल शर्मा
आनंद भवन, जगन गली
माधोगंज, लश्कर ग्वालियर
म.प्र. (इण्डिया)
फोन—0751—2336095

क्लीनिक का पता:
डॉ. भरतलाल शर्मा
जीवाजीगंज, पुलिस चौकी
के सामने, लश्कर ग्वालियर
म.प्र. (इण्डिया)
फोन—0751—2429475



श्री वैभव लक्ष्मी व्रतकथा



घोर कलयुग में
आशा की एक नई
चमकती किरण

यह मात्र पुस्तक अथवा व्रत नहीं है अपितु प्रत्येक गृहस्थी एवं जनसाधारण के लिये अभावों, परेशानियों को दूर करके धन प्राप्ति का सरल एवं चमत्कारिक ढंग है। जिस किसी भाई के कारोबार में परेशानियाँ पैदा हो रही हैं, व्यापार कम हो रहा है अथवा कोई अन्य आर्थिक समस्याएँ हैं या कोई मानसिक व शारीरिक कष्ट या गृह कलेश है। सिर्फ एक बार इस पुस्तक को पढ़ें तथा विधि-विधान सहित व्रत को करें। जिसके फलस्वरूप आप 'माँ वैभव लक्ष्मी' की कृपा से अपनी सभी मनोकामनायें अतिशीघ्र प्राप्त कर सर्व सुखी होंगे।

मूल्य : 6.00

पुस्तक पर **लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली** तथा पुस्तक का रजि॰ नं॰ L-15296/96 देख लें

प्रकाशक : **लक्ष्मी प्रकाशन**

4734, प्रथम मंजिल, बल्ली मारान, दिल्ली-6 • फोन : 2917707

पुस्तक को निकट के बुक स्टाल से लें, न मिलने पर प्रकाशक से मँगवायें, पाँच प्रतियों से कम का आदेश न भेजें।

कृपया प्रचार में बाँटने वाले सज्जन प्रकाशक से सम्पर्क करें। उन्हें यह पुस्तक लागत मात्र पर दी जायेगी।